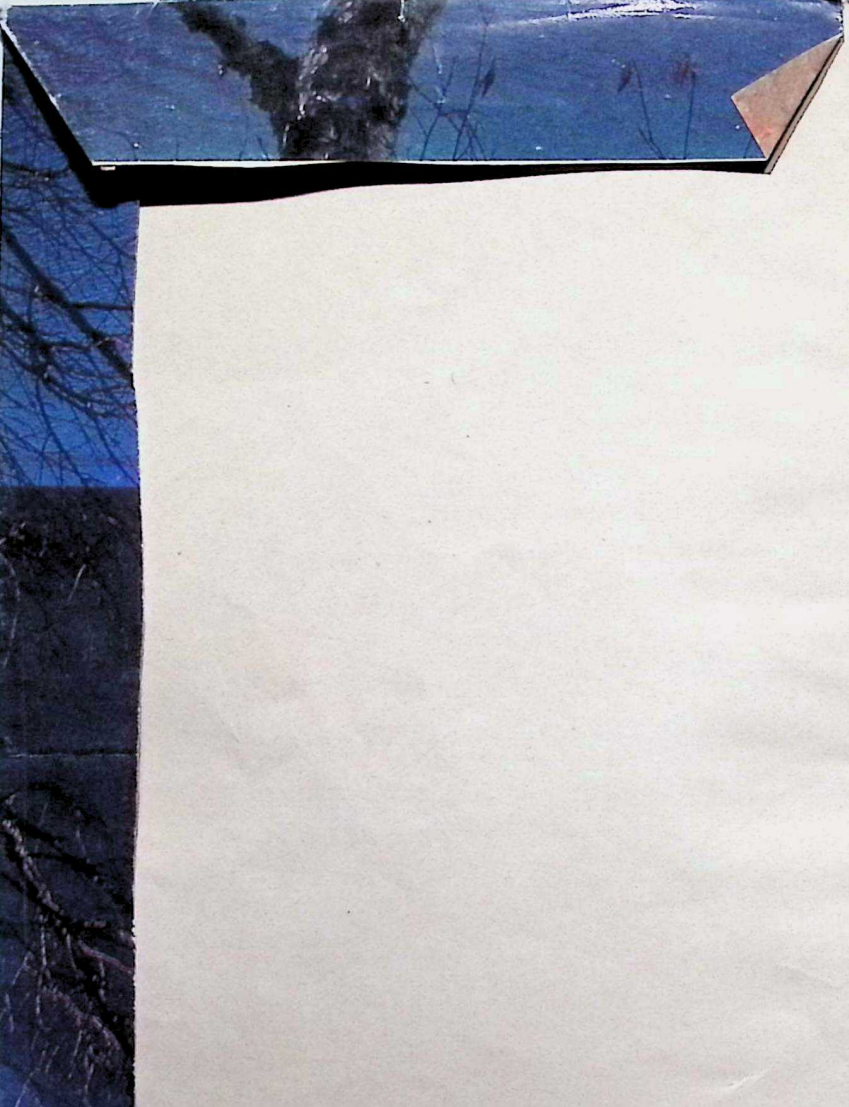

हम लोग स्वस्थ तो रहना चाहते हैं, लेकिन स्वास्थ्य के वास्ते जो करना आवश्यक है वह करने से सदा कतरा जाते हैं। योगिराज कृष्ण की हम पूजा करते हैं, मगर उनके समान योगिराज बनने का कोई यत्न नहीं करते। योग के विषय में हमने कभी ध्यान ही कहाँ दिया !

आइये, आज ही से उस अभाव की पूर्ति शुरू कर दें। इस पुस्तक के सहारे उस स्वस्थ-सुखमय मार्ग का अनुसरण करें जिसे अपनाकर श्री कृष्ण ने 'भगवान्' की पदवी प्राप्त की।

□

योगासनों द्वारा रोगों
की सरल चिकित्सा
पर अद्वितीय पुस्तक

सुबोध पब्लिकेशन्स

स्वास्थ्य और योगासन

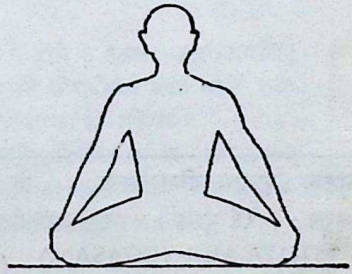

योगाचार्य भगवानदेव

© सुबोध पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली-2

प्रकाशक : सुबोध पब्लिकेशन्स, २/३ बी, अंसारी रोड, नई दिल्ली-२
संस्करण : १९९६ मुद्रक : जयमाया आफसेट, शाहदरा, दिल्ली-३२
SWASTHYA AUR YOGASANA
by Yogacharya Bhagwandev

प्राक्कथन

"हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रयोग और अनुभव के आधार पर सूक्ष्म और स्थूल शक्तियों की प्राप्ति की प्रक्रिया को ही योग-विद्या की संज्ञा दी है। योग-विद्या का विस्तृत वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है। यौगिक ज्ञान भारत का प्राचीन ज्ञान है। आज के इस वैज्ञानिक युग में इस ज्ञान को विज्ञान की कसौटी पर पूरा उतारने और इसे एक शुद्ध विज्ञान सिद्ध करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। यह विद्या एक-देशीय नहीं, सार्वभौमिक है। यही कारण है कि विदेशों में भी इस ज्ञान के प्रति लोगों में रुचि बढ़ती जा रही है।

पुस्तक सरल भाषा में होने से इसका महत्त्व इसलिए और बढ़ गया है कि इससे योग-विद्या जैसा गहन ज्ञान सामान्य जन के लिए बोधगम्य हो सकेगा।

मुझे आशा है, सामान्य-शिक्षित पाठक भी इस ग्रंथ का उपयोग करके लाभान्वित होगा और इस ग्रंथ के लेखक का परिश्रम सफल सिद्ध होगा।

जगजीवन राम

२५ मई, १९७३ (केन्द्रीय मंत्री, भारत सरकार)

"योग विद्या का किसी जाति अथवा देश-विदेश से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह महान् वैज्ञानिक विद्या हमारे पूर्वज ऋषियों ने मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रदान की है। इस भौतिक काल में योग के शुद्ध स्वरूप के प्रचार-प्रसार की परमावश्यकता है।"

आनन्द स्वामी सरस्वती

"आज जब सारे विश्व में भ्रष्ट वातावरण ने मानव को मानव न बनाकर शैतान बना दिया है, चारों ओर चरित्र-हीनता, लूट-खसोट, बेईमानी का बोल-बाला है, तब एक सभ्य मानव सोचता है कि इसका उपाय क्या है? राष्ट्र के भावी कर्णधार हमारे बच्चे विद्याभ्यास पर ध्यान न देकर तोड़-फोड़ करने में रुचि लेते हैं, ऐसा क्यों? परमात्मा द्वारा प्रदत्त यह पवित्र मानव-शरीर धर्म, अर्थ, काम का सचाई से पालन करके मोक्ष-प्राप्ति के पथ पर अग्रसर न होकर रोगों और दुःखों से ग्रस्त क्यों बन गया है? मानव, मानव से प्यार न करके घृणा क्यों करने लगा?

इन सब समस्याओं का समाधान हमारी दृष्टि में 'अष्टांग योग विद्या' के प्रचार-प्रसार द्वारा ही संभव है जिसको महामुनि पतंजलि ने 'सार्वभौम महाव्रत' की संज्ञा दी है। बचपन से ही बच्चों को विद्या-मंदिरों में उनकी योग्यता के आधार पर योग-विद्या की क्रियात्मक जानकारी दी जानी चाहिए। सरकार को भी पाठ्यक्रम में इस विद्या को अवश्य स्थान देना चाहिए।"

वसन्त पंचमी, १९७५ — पद्मा भारती

४, विश्वविद्यालय मार्ग, दिल्ली-७ — (एम.ए., बी.एड.)

अनुक्रमणिका

१. स्वास्थ्य और योगासन ... ९

२. योग किसे कहते हैं ? ... १२

३. यम ... १२

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह

४. नियम ... १५

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान

५. आसन ... २०

शीर्षासन, एकपादशीर्षासन, ऊर्ध्वपद्मासन, पद्मशिरनाभिस्पर्शासन, सूर्यनमस्कार, ताड़ासन, एकपादासन, महावीरासन, उत्कटासन, त्रिकोणासन, सुप्तत्रिकोणासन, पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन, सर्वाङ्गासन, हस्तपादविस्तृतहलासन, चक्रासन, भुजंगासन, पवनमुक्तासन, मत्स्यासन, योगमुद्रासन, धनुरासन, पूर्वोत्तानासन, हृदयस्तंभासन नाभिआसन, स्थितऊर्ध्वपादविस्तृतासन, हंसासन, जानुशिरासन, संकोचासन, यानासन, ऊर्ध्वपादतलसंयुक्तासन, मृगासन, ध्रुवासन, खगासन, कोणासन, धनुपाकर्षणासन, पर्वतासन, पादतलसंयुक्तमूर्द्धास्पर्शासन, तुलासन, एकपादांगुष्ठासन, वज्रासन, उष्ट्रासन, एकपादजानुनासिकास्पर्शासन, शयनद्विपादनासाग्रस्पर्शासन, मस्तकापादांगुष्ठासन, पादांगुष्ठनासिकास्पर्शासन, चक्रनमस्कारासन, उत्थितएकपादहस्ता-

सन, उत्तानपादासन, हलासन, सूर्यदर्शन, एक-पादोत्थित-अर्द्धबद्धपद्मासन, उत्थितएकपाद-जानुशिरासन, शुतरमुर्गासन, गोमुखासन, मण्डूकासन, हस्तपादगुप्तासन, योगासन, नाभिपीड़ासन, उत्कटासन, पादहस्तासन, सुप्त-वज्रासन, लतासन ।

६. रोग और आसन ... १०४
७. प्राणायाम ... १०५
८. प्रत्याहार ... १११
९. धारणा ... ११२
१०. ध्यान ... ११३
११. समाधि ... ११४
१२. योगदर्शन के पाद-समाधिपाद ... ११५
१३. साधनपाद ... १२१
१४. विभूतिपाद ... १२६
१५. कैवल्यपाद ... १३२
१६. योगाभ्यासी की दिनचर्या ... १३५
१७. स्वर्णमयी सुन्दर सौ बातें ... १३६
१८. ब्रह्मचर्य, व्यायाम, भोजन, मालिश, दांत, आँखें, बाल, मधुमेह ... १४२

स्वास्थ्य और योगासन

'योग' का सरल अर्थ है जोड़ना। मेल-मिलाप का नाम योग है। अपने-आपको परमात्मा से मिलाना ही 'योग' है। जो व्यक्ति सबके साथ मिला रहता है, किसी को दुःखी नहीं करता, सबके अंदर एक ही आत्मा देखता है, अपने-आपको सबके समान समझता है, एवं चींटी से लेकर राजा तक सबके अन्दर ईश्वर का वास समझता हुआ प्रत्येक प्राणी से हार्दिक प्रेम करता है, उसके तमाम दुःख-क्लेश दूर हो जाते हैं और उसका जीवन 'योगमय जीवन' हो जाता है। इसी का नाम 'योग' है। फिर उस मनुष्य का किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं होता। जब वह सबसे प्रेम करेगा, सबके साथ मेल-जोल से रहेगा, सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करेगा, तो सब उसका सम्मान करेंगे। प्रत्येक अवस्था में उसको पूर्ण सहयोग देंगे। तब देखिये उसका मन कितना प्रसन्न होगा। उसके सब कष्ट दूर हो जायेंगे। यह लड़ाई-भिड़ाई, कलह-क्लेश ही दुःखों की जड़ है। इसी को मिटाकर हमें दयालु और बलवान् बनना हो तथा परम शान्ति और सुख प्राप्त करना हो तो नित्य योगाभ्यास परमावश्यक है।

जो मनुष्य रोगग्रस्त है, जिसका शरीर ही स्वस्थ नहीं है, वह 'योग' क्या करेगा ? वह तो अपना जीवन भी आनन्द से व्यतीत नहीं कर सकता। वह ईश्वर-भक्ति नहीं कर सकता। रोगी, प्रत्येक वस्तु से वंचित रहेगा। इसलिये 'योग' पर ज़ोर देना आवश्यक है। नियमित और क्रमशः योग करनेवालों को मोक्ष प्राप्त होता है।

योग-क्रिया आरम्भ करने से पूर्व अपने शरीर के अवयवों, नसों

और नाड़ियों को दृढ़ और पवित्र बनाना चाहिए। अपने मस्तिष्क में से कुविचार निकालकर, उसे बलिष्ठ और पवित्र बनाकर, सारे शरीर पर नियन्त्रण करना चाहिये। निःसन्देह तभी अपने मन को वश में रखकर परमात्मा से मिल सकेंगे। मन को वश में किये बिना जो लोग योग-साधन करने लगते हैं, उन्हें उनका चंचल मन अपनी ओर खींच-कर मार्ग-भ्रष्ट कर देता है। प्रश्न यह उठता है कि मन को वश में कैसे किया जाए ?

इसका उत्तर शास्त्रों में दिया गया है कि, "यह मन निरन्तर अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जाता है।"

संसार की समस्त वस्तुएँ नाशवान् हैं, इसलिए हमारा यह शरीर भी नाशवान् है। परमात्मा ने हड्डियों के एक ढांचे के ऊपर मांस, मेद, रक्त, मज्जा और स्नायु लगा दी है। इस ढांचे के अन्दर की मशीन को चलाने के लिए हृदय, फुफ्फुस, यकृत, आमाशय और बड़े-बड़े क्रियामय अवयव लगा दिए हैं। इन सबके ऊपर नियन्त्रण करने की शक्ति मस्तिष्क को दी है। मस्तिष्क को 'उत्तमांग' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त मुख, कान, आंख, नाक, हाथ को पांच ज्ञानेन्द्रियां कहते हैं। जिस प्रकार लोहे को अपनी इच्छा से परिवर्तित करने और साफ़ करने के लिए आग में डाला जाता है, उसी तरह 'योगाभ्यास' भी इन इन्द्रियों और नसों को अपनें वश में करने के लिए एक यंत्र है। शरीर की रचना के आधार पर ही संसार की सब मशीनें तैयार की गई हैं।

हम जो खाते हैं उसका 'रस' तैयार होकर पकने लगता है और इसी पके हुए 'रस' से 'रक्त' बनता है। इस 'रक्त' से 'मांस', मज्जा', 'मेद' और 'स्नायु' बनते हैं। 'मज्जा' के पश्चात् 'वीर्य' बनता है। इसलिये इसको 'सप्तधातु' कहते हैं। इस कार्य में लगभग ४० दिन लगते हैं। अगर शरीर की पाचन-क्रिया खराब हो जाये अथवा कोई अंग ठीक प्रकार से काम न करे, तो शरीर की क्रियाओं में बड़ी गड़-बड़ी पैदा हो जाती है। इस तरह से बना 'रस' भी बड़ा विकृत और स्वल्प मात्रा में तैयार होता है और बाकी धातु भी ठीक प्रकार से तैयार नहीं होती। इसलिये पाचन-शक्ति का विशेष ध्यान रखना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र में लिखा है :—

"मानव-शरीर की रक्षा के लिए पाचन-शक्ति और वीर्य की रक्षा करना परमावश्यक है; क्योंकि जो लोग अनेक प्रकार से मिथ्या आहार-विहार से शरीर की पाचन-शक्ति और वीर्य को नष्ट कर डालते हैं, अपने हाथों अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारते हैं।"

योग-साधना करनेवाले को आहार पर खास ध्यान देना चाहिये। कच्ची और अधिक पकी हुई वस्तुएँ, घी, तेल आदि में तली-भुनी हुई चीज़ें जठराग्नि को मन्द कर देती हैं और पाचनक्रिया ठीक प्रकार से न होने के कारण शरीर में नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिये जहाँ तक हो सके कच्चे-सड़े फल, भल्ले, पकौड़ी और मिठाइयाँ खाने से परहेज़ करना चाहिये। इसके अतिरिक्त खून में उबाल लानेवाली चीज़ें, जैसे मांस, अण्डे, सिगरेट, बीड़ी, शराब, भाँग, चरस, बर्फ़, गर्म पानी, गर्म मसाला, खटाई आदि से दूर रहना चाहिये। मगर हम देखते हैं कि इन वस्तुओं को लोग छोड़ने के बजाय अधिक प्रयोग में ला रहे हैं और यही कारण है कि देश में नाना प्रकार की आधि-व्याधि का प्रसार हो रहा है। ये चीज़ें स्वयं को तथा भावी संतति को दुर्बल बना देती हैं। ये चीज़ें खून में कृत्रिम गर्मी पैदा करके उसकी असली शक्ति खो देती हैं और खून को विषैला बनाकर सदा के लिए मानव-जीवन को खतरे में डाल देती हैं। इन चीज़ों से गठिया, सिर-दर्द, मिरगी, सिर में गर्मी चढ़ना, दिल की धड़कन, सुस्ती, काहिली, सिर का घूमना, छाती का जलना, पेट का दर्द, अफ़ारा, बवासीर, आन्त्रशोथ, यकृत और प्लीहा की वृद्धि, दस्त, वमन, प्रवाहिका, अतिसार, नासूर, दृष्टिमान्द्य, पीलिया (पांडुरोग), वीर्यपात, अजीर्ण, नींद की कमी आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

इस पुस्तक में योग के आठों अंगों के अतिरिक्त रोगों से बचने के उपायों तथा अन्य बहुत-सी बातों पर सार-रूप से प्रकाश डाला गया है। वास्तव में 'अष्टांग योग विद्या' एक ऐसी सार्वभौम, वैज्ञानिक, महान् विद्या है जिसको जीवन में अपनाकर मनुष्यमात्र 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' का रूप धारण करके, बिना किसी कष्ट और क्लेश के वेद के आदेशानुसार सौ वर्ष तक पूर्ण स्वास्थ्य के साथ अनन्त आनन्द की अनुभूति करता हुआ इस संसार में स्वर्गिक सुख प्राप्त कर सकता है।

योग किसे कहते हैं ?

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥" (योगदर्शन १।२)
अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है।

योग के आठ अंग

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, और (८) समाधि, ये योग के अष्टांग हैं।

१. यम
(Yama—Social Principles)

"तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः।" योगदर्शन २-३०
(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह, ये पाँच यम हैं।

अहिंसा
(Ahinsa—Non-Violence)

किसी का अनिष्ट चिन्तन न करना, सब प्राणियों के साथ वैर-भाव छोड़कर प्रेम-नीति से बर्तना, सब कर्म अपने और दूसरों की सुख-शान्ति के लिए ही करना, जो कोई कष्ट दे तो यह जानकर कि यह हमको हमारे कर्म का फल दे रहा है, बदले में उसको कष्ट देने की कभी चेष्टा भी न करना, जो दुःख प्राप्त हों उनको कर्म-फल जान-

कर सहर्ष सहन करना, परमात्मा को सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, न्याय-कारी और कर्मफल-दाता समझकर निश्चय जानना कि हिंसा का फल 'दुःख' और दया का फल 'आनन्द' है—यही अहिंसा है।

अहिंसा व्रत का पालन करने से अहिंसक के समीप वैर का त्याग हो जाता है, अर्थात् न वह किसी से वैर करता है और न कोई उससे। वह सारे संसार के लिए और सारा संसार उसके लिए आनन्दप्रद हो जाता है।

सत्य

(Satya—Truth)

जैसा अपने ज्ञान में हो वैसा ही सत्य बोलना, करना और जानना। मिथ्याचरण से स्वार्थ की सिद्धि चाहना अनधिकार चेष्टा है। अनधिकार चेष्टा करते ही अन्तःकरण में भय, शोक, मोह, चिन्ता और संशय का प्रवेश होने लगता है। यही हिंसा आदि पापों और दुःखों का मूल है। सुख का पूर्व-रूप निर्भयता और स्वतन्त्रता है। निर्भय और स्वतन्त्र वही है जो हिंसा-रहित सत्यव्रती है। जैसे-जैसे मिथ्याचरण में प्रवृत्ति होती जाती है, वैसे-ही-वैसे आत्मिक निर्बलता, अज्ञानता, भय-शोकादि की भी वृद्धि होती जाती है। अंत में अज्ञानान्धकार में पड़कर घोर विपत्तियों और क्लेशों के जाल में पड़ जाना पड़ता है। मिथ्याचरण से प्राप्त की हुई सम्पत्ति भी संकट में डालकर विनाश को प्राप्त हो जाती है। सत्यव्रती का पूर्वकृत कर्म-फलरूप दुःखभोग आत्मिक बल की वृद्धि और आनन्द की प्राप्ति का साधन बन जाता है। सदाचारी बनने और मिथ्याचरण से छूटने का मूलोपाय सत्य-भाषण है। इससे बाह्य और आभ्यन्तर के दुर्गुण, दुर्व्यसन दूर भाग जाते हैं। सत्य-भाषण में वाक्-छल न करना और न अप्रयोजन, अप्रिय तथा प्राणियों का अनहित करनेवाला वाक्य बोलना। ईश्वर और संसार के सन्मुख विश्वासपात्र रहना।

सत्यव्रती अनधिकार चेष्टा नहीं करता और न उसे असमय किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होती है। उसे अपने सुख-शान्ति के उपाय स्वयं सूझ पड़ने लगते हैं। उसे भावी परिणाम का बोध हो जाया

करता है। उसके संकल्प, विचार, भाव और कर्म सत्य, सम्यक् और नियमित होते हैं; इसलिये उसे सम्यक् सब वस्तुएँ प्राप्त हो जाया करती हैं और उसकी सब चेष्टाएँ, क्रियाएँ तथा उनके फल आनन्द-प्रद होते हैं।

अस्तेय

(Asteya—Non-stealing)

पदार्थ के स्वामी की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ की इच्छा भी न करना। माता-पिता आदि जो अपने पदार्थ प्रसन्नतापूर्वक देवें, जिन पदार्थों के ग्रहण व प्राप्त करने में किसी को दुःख न हो और न अपने मन में भयादि उत्पन्न हो, जिन पदार्थों के भोग करने का अन्तिम परिणाम दुःखभोग न हो किन्तु सुखभोग ही हो, जो पदार्थ देव-ऋण, पितृ-ऋण और ऋषि-ऋण आदि ऋणों से उऋण होकर शेष रह जावें वे अपने, और अन्य दूसरों के हैं।

जो अपने शुभ संकल्पों की पूर्ति करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है, जो धर्मयुक्त पुरुषार्थ से ही पदार्थों की प्राप्ति करना अपना कर्तव्य समझता है, जो आय से अधिक व्यय नहीं करता है, जो लोभ और मोह-रहित आवश्यकतानुसार और नियमपूर्वक पदार्थों का संग्रह और भोग करता है, जो सब कर्म परोपकारयुक्त करता है, उसके लिए संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है। उसको जिस समय, जहाँ और जिस पदार्थ को प्राप्त करने की आवश्यकता होती है, उस समय वह पदार्थ प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्मचर्य

(Brahmacharya—Sex-morality)

मैथुन का त्याग करना; किसी प्रकार की चंचलता और कुचेष्टा न करना; किसी का स्पर्श न करना; नीचे दृष्टि रखना; एकांत-वास करना; प्रायः मौन रहना; समय को व्यर्थ न खोना, किन्तु नियत समय पर नियमपूर्वक सब काम करना; शुद्ध सतोगुणी स्वल्पाहार सेवन करना; दिन में, रात्रि के प्रथम पहर और प्रातःकाल ब्राह्म-मुहूर्त में न

सोना; सीमा से अधिक न जागना; कौपीनवन्त होना अर्थात् वीर्य-रक्षा करने में सदैव सावधान रहना।

ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने से वीर्य-लाभ होता है। जितनी अधिक वीर्य-रक्षा की जाती है उतनी ही अधिक ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान की प्राप्ति तथा इच्छा की पूर्ति करने की शक्ति प्राप्त होती है।

अपरिग्रह

(Aparigraha—Non-Hoarding)

स्वार्थ, अभिमान, दम्भ और पाखंड न करना; पराधीन कर्मों और त्याज्य वस्तुओं को स्वयं त्याग देना; आवश्यकताओं को न्यून करना; आवश्यकता से अधिक वस्तु समीप न रखना; पुत्र, धन और मान-प्रतिष्ठा की इच्छा न करना; दूसरों का हित करते हुए निर्वाह करना; एकान्त-शान्त रहना।

एकान्त-शान्त रहने पर भी कुछ काल तक भूतकाल की जीवन-घटनाओं और प्रसंगों का स्मरण जागृत और स्वप्नावस्था में आता है, उस समय उनके कारणों और परिणामों का विचार करके शिक्षा प्राप्त करना; यदि संगदोष या संस्कार-दोष से मन की मलिन वासनाओं व पापों की ओर प्रवृत्ति हो तो उनके विरुद्ध उच्च और उग्र विचार और भाव धारण करके मन को उत्साहित और उत्तेजित रखना; जिनके संकल्प, विचार, भाव और कर्म हिंसादि पापों से रहित सत्यधर्मानुकूल होते हैं, उनके स्वप्न भी वैसे ही होते हैं।

अपरिग्रह-व्रत का पालन करने से शारीरिक और मानसिक बल तथा स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है। तब योगी देश, काल और वस्तु के संयोग से अपने पूर्वजन्म और इस जन्म की स्थिति, स्वकर्तव्य और भावी परिणाम को जान लेता है।

२. नियम

(Niyama—Individual Duties)

"शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।"

(१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वर-प्रणिधान, ये पाँच नियम हैं।

शौच

(Shaucha—Purity)

शरीर, स्थान, वस्त्र और पात्रादि को स्वच्छ और पवित्र रखना; शीतल, मंद, सुगन्धयुक्त वायु का सेवन करना; हल्का, मीठा, निर्मल जल छानकर पीना; सुगन्धित पुष्टिकारक रोगनाशक और मिष्ट (सतोगुणी) भोजन करना।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में जागकर, दूर वन में जा मलमूत्र को त्यागकर मिट्टी और जल से अच्छी प्रकार स्वच्छ और शुद्ध हो, दंत-धावन, कुल्ला और स्नानादि से निवृत्त हो नित्य-कर्म करना, ऐसे ही सायंकाल भी। निवास-स्थान में वायु और प्रकाश का प्रवेश हो। नित्य सायं-प्रातःकाल अग्निहोत्र होता हो। शीतोष्ण का शक्ति से अधिक सेवन न करना।

क्षुधा-तृषा से अधिक, बार-बार, अनियमित और असमय खान-पान न करना। भोजन के पदार्थ देश, काल, अवस्था और शरीर के अनुकूल हों। भोजन करने में शीघ्रता न करना, किन्तु अच्छी प्रकार दाँतों से पीस लेना। किसी का जूठा व किसी के साथ एक थाली व पात्र में भोजन व जलपान न करना। भोजन के पूर्व हाथ-पैर धोकर आचमन, इसके पश्चात् किंचित् जलपान कर अच्छी प्रकार कुल्ला आदि करके स्वच्छ होना।

मद्य, मांस, तम्बाकू आदि अभक्ष्य, सड़े, गले, बुसे और रूक्ष तथा लहसुन, प्याज, शलजम, गाजर, गोभी, आलू, लाल मिर्च और खटाई आदि दुर्गंधित और तमोगुणी आहार न करना। शनैः-शनैः छोड़ने का अभ्यास करके नमक आदि रजोगुणी आहार भी छोड़ देना। जिस खेत में गवादि पशुओं के मलमूत्र के अतिरिक्त घृणित खाद पड़ता हो, उस खेत के अन्नादि का सेवन न करना। जो अन्नादि वन में ही रहे, ग्राम में न लाया जावे, तथा वन में ही संस्कार करके विधिवत् बनाया गया हो, उसका सेवन करना अत्युत्तम है। जल यदि उत्तम

प्राप्त न हो तो अच्छी प्रकार अग्नि से उष्ण कर लेना व अन्य प्रकार से शुद्ध-निर्मल बना लेना। जल को मिट्टी और ताम्रपात्र में रखना उत्तम है। ताम्रपात्र में ओष्ठ लगाकर न पीना और न उसमें जल के अतिरिक्त अन्य कोई खाने-पीने योग्य वस्तु रखना। कोयला व दुर्गंधित लकड़ी आदि से भोजन न बनाना।

सोने के समय वायु को आने-जाने देना। मुख को न ढककर अँधेरे में सोना। मुख से श्वास न लेकर नासिका से ही लेने का अभ्यास रखना। मलमूत्र, छींक आदि को न रोकना। केश, नख कटाते रहना; यदि केश न भी कटाएँ तो स्वच्छ अवश्य रखना। मनुष्यादि की नासिका आदि से निकली वायु और उनके शरीरादि की दुर्गंध से बचना। किसी को विशेष आवश्यकता के बिना समीप न आने देना, विशेष करके जो अभक्ष्य पदार्थ खाते-पीते हों और जिनको तमोगुणी पदार्थ अधिक प्रिय हों। जो शरीर, स्थान, वस्त्र, पात्रादि को अपवित्र और घृणित रखते हों, जो दूषित, रोगी और दुष्ट स्वभाव के हों, उनको अपने वस्त्र-पात्रादि का भी स्पर्श न करने देना और न उनके बनाये भोजन, वस्त्र, पात्रादि को ही ग्रहण करना। जहाँ तक हो सके अपने आवश्यक कार्यों को स्वयं कर लेना।

'शौच' नियम का पालन करने से बुद्धि की स्थूलता, मन की मलिनता, चित्त की चंचलता दूर होती है; इन्द्रियाँ अनुकूल होती हैं। आलस्य और प्रमाद दूर होता है। शरीर और संसार से त्याग-भाव उत्पन्न होता है। तमोगुणी और रजोगुणी पदार्थ ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे छोटे बालक को कटु पदार्थ। ईश्वर में प्रेम बढ़ता है और उपासना करने में तीव्र गति से प्रवृत्ति होती है।

सन्तोष

(Santosha—Contentment)

अपने-आप में स्थित अर्थात् सन्तुष्ट रहना। आत्मप्रिय कर्म करना। आनन्दित पुरुषों से मैत्री, दुःखियों पर करुणा, धर्मात्माओं पर प्रसन्नता और अधर्मियों से उपेक्षा रखना। राग और द्वेष से पृथक् रहना। हानि में शोकित और लाभ में हर्षित न होना। अनायास जो

प्राप्त हो उसे अपना भोग समझकर सन्तुष्ट रहना। मौन अथवा मितभाषी होना। सब प्राणियों में अन्तर्यामी परमात्मा की गति अर्थात् प्राप्ति का अनुभव करके प्रसन्न रहना।

'सन्तोष' नियम का पालन करने से उत्तम सुख-लाभ होता है।

तप

(Tapah—Discipline)

अपने उद्देश्य को पूर्ण किए बिना न छोड़ना। योग्यता और अधिकार को बढ़ाना। धैर्य और विवेकपूर्वक स्वकर्त्तव्य का पालन करना। संसार का उपकार निष्काम भाव से करना। मलिन वासनाओं को अन्तःकरण से दूर करना। कष्टों और विघ्नों को सहन और निवारण करना। अपने से जो भूल, अपराध और पाप हो जावें उनका सुधार और प्रायश्चित्त करना तथा अपने को स्वयं उचित दण्ड देना।

तप करने से शरीर और मनादि इन्द्रिय के विकार दूर होकर सिद्धि प्राप्त होती है।

स्वाध्याय

(Swadhyaya—Veda & Self-study)

"ओ३म्" का अर्थ मननपूर्वक जप करना, वेद और उपनिषदादि तथा अन्य ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय; 'पक्षपात, हठ, स्वार्थ और दुराग्रह को छोड़कर शुद्ध बुद्धि से तर्क के साथ प्रमाणों से विचार करते हुए करना। उत्तरोत्तर वेद-वेदांग के पठन-पाठन की उन्नति करते रहना।

जिस प्रकार यदि मनुष्य भोजन न करे तो शरीर निर्बल हो जाता है और वह कोई काम नहीं कर सकता है, इसी प्रकार नित्यप्रति स्वाध्याय करके यदि ज्ञानामृत-पान न किया जाए तो विचार, विवेक, उत्साह और पुरुषार्थशक्ति निर्बल पड़ जाती है। चित्त को एकाग्र करने और इष्टदेव की ओर लगाने का साधन 'स्वाध्याय' है। योगमार्ग में चलने के लिए यह ज्ञान-प्रकाश का साधन है।

स्वाध्याय करने से उत्साह और पुरुषार्थ की वृद्धि, धारणा, ध्यान

और समाधि की सिद्धि, ज्ञान, कर्म, उपासना, विज्ञान और इष्टदेव परमात्मा की प्राप्ति होती है।

योगी मूर्द्ध ज्योति में संयम करके ग्रन्थ के जिस विषय का स्वाध्याय करता है, उस विषय के लिखने के समय ग्रन्थकर्त्ता का जैसा ज्ञान, विचार और भाव था वैसा ही जान लेता है और ग्रन्थकर्त्ता की आत्मा का दर्शन करता है; मानो ग्रन्थकर्त्ता योगी को स्वयं पढ़ाता है। वेदों के स्वाध्याय से ईश्वर का भी साक्षात्कार होता है।

ईश्वर-प्रणिधान

(Ishwar-Pranidhana—Faith in God)

इस शरीर में पाँच तत्त्व हैं। वे सब अपने-अपने सजातीय तत्त्वों की ओर जा रहे हैं। अन्त में वे हमारा साथ छोड़ देंगे, क्योंकि हम (जीव) उनमें के नहीं हैं; किन्तु कुछ ईश्वर से मिलते-जुलते हैं। ईश्वर और हम, दोनों 'निराकार' और 'चेतन' हैं। ईश्र 'अमृत' है और हम 'अमृत-पुत्र' हैं। ईश्वर और हममें देशकाल की दूरी नहीं है; केवल ज्ञान की दूरी है, जो उपासना (योग) करने से दूर हो सकती है।

सर्वदा और सर्वावस्था में ईश्वर के समीप रहना अर्थात् परमपिता, परमगुरु, परमसहायक परमात्मा को सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वाधार, सर्वेश्वर, करुणाकर, पुण्यनिधि, अधमोद्धारक, सकल दुःखविनाशक, सर्वानन्द और अन्तर्यामी जानकर स्मृति, प्रार्थना, उपासना और आज्ञापालन करने में सदैव निमग्न रहना। प्राण, मन, श्रोत्र, नेत्र और वाणी आदि को ईश्वर के अनुकूल रखना। जीवनार्पण कर देना अर्थात् जीवन का एक श्वास भी ईश्वर के प्रतिकूल न हो। ईश्वरीय आनन्द और प्रेरणा का सदैव अनुभव करते रहना, इसमें असावधानी न हो। प्रेम के आदर्श नचिकेता, ध्रुव और प्रह्लाद जैसा प्रेमभाव धारण करना।

जो एक क्षण के लिए भी कभी ईश्वर को नहीं भूलता, जिसके जीवन का लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति है, जिसकी गति, मति और रति ईश्वर में ही है, उसी को समाधि सिद्धि होती है।

आसन

(Asana—Prayer Postures)

"जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हों, उसको आसन कहते हैं।" जिस वन में स्वभाव से ही काले मृग विचरते हों, जहाँ उत्तम जलाशय हो, जहाँ अत्युत्तम झरना झरता हो, जहाँ शुद्ध वायु आती हो, जहाँ सुगन्धित पुष्पादि हों, जहाँ अग्निहोत्रादि 'यज्ञ' होता हो, जहाँ विघ्नकारी मनुष्यादि न हों, जो नेत्रों को पीड़ा देनेवाला न हो, जहाँ कंकड़, वालू और धूप न हों, जो निर्विघ्न और एकान्त हो, जो समशुद्ध और प्रिय हो, वहाँ कुशादि बिछा, बैठकर प्राणायाम और प्रत्याहार का संयम करे।

जिस विधि से सुखपूर्वक बैठकर प्राणायामादि क्रिया की जा सके, कोई नस दबने न पावे और चित्त में अस्थिरता न हो, उसी स्थिरता से बैठना चाहिए। बैठने की सर्वोत्तम विधि यह है कि दाहिने पग की एड़ी वाम ओर की कटि में लग जावे और पंजा कटि से बाहर रहे। वाम पग का पंजा दाहिने पग की गाँठ के नीचे हो और अँगुलियाँ बाहर निकली हों। दोनों हाथों की हथेलियाँ ऊपर को और उनका पृष्ठभाग अपनी ओर की गाँठों पर हो। दाहिने हाथ की तर्जनी के ऊपर का भाग अपने अंगूठे के मध्यभाग में मिला हो। वाम हाथ की तर्जनी का ऊपर का भाग अपने अंगूठे के ऊपर के भाग में मिला हो। शेष दोनों हाथों की अँगुलियाँ परस्पर मिली हुई, सीधी और किंचित् नीचे की ओर झुकी हों। सब अंग कड़े और सीधे हों। आँखें बन्द हों।

इस प्रकार बैठकर प्राणायाम और प्रत्याहार करने से शरीर के सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग और नस-नाड़ियाँ स्थिर रहती हैं। आलस्य नहीं आता और विघ्न शान्त रहते हैं। जब योगी का मन उपासना में पूर्णरूप से लग जाता है तब आसन की सिद्धि स्वतः हो जाती है।

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा का वास होता है। यह शरीर ईश्वर का दिया मन्दिर है। इसको सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की साकार मूर्ति बनाने के लिए हम यहाँ कुछ आसनों का सार-रूप में उल्लेख करते हैं।

शीर्षासन

जैसे फलों का राजा आम माना जाता है, ठीक इसी प्रकार आसनों का राजा शीर्षासन माना गया है।

इस आसन को बहुत-से लोग वृक्षासन, कपाली आसन, शीर्षासन तथा विपरीतकरणी मुद्रा भी कहते हैं।

विधि—शीर्षासन करने से पूर्व पेट पूर्णरूप से साफ़ होना आवश्यक है। एक नरम कपड़े की ईंडरी ज़मीन पर रखें। घुटने टेककर ज़मीन

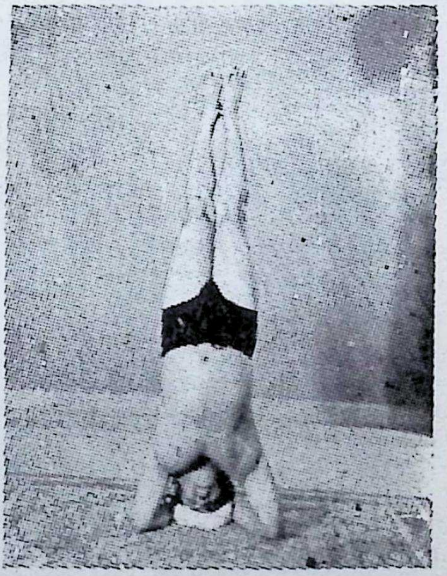

शीर्षासन (Sheersh-Asana)

पर बैठ जावें। हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरी में डालकर, नरम कपड़े की ईंडरी के सहारे गोल रखें। उसके ऊपर सिर को इस तरह रखें, जिससे सिर आगे की तरफ (जहाँ से बाल शुरू होते हैं वहाँ से) चार अंगुल तक का भाग ईंडरी पर हो और सिर के वास्तविक

स्थान पर दबाव न पड़े, इसका पूरा खयाल रखा जाए। अब घुटनों को ऊपर उठा लें। टाँगें सीधी करें। पैर के अंगूठे ज़मीन पर ही रहें। शरीर सीधा रखें। पाँवों को मुँह की ओर लावें। शरीर का वज़न हाथों पर तथा सिर के अगले भाग पर रहना चाहिए। फिर शरीर को सँभालते हुए धीरे-धीरे टाँगों को मोड़कर, घुटनों को आकाश की तरफ ले जावें। इस प्रकार करने से पाँव पीछे की तरफ को चले जाएँगे। इसके पश्चात् पाँवों को धीरे-धीरे ऊपर आकाश की तरफ ले जावें। शरीर बिल्कुल सीधा रखने का पूरा खयाल रखा जाय। प्रथम १०-१५ सेकण्ड तक ही यह आसन किया जाय। क्रमशः समय बढ़ाया जावे। दृष्टि बन्द न रखी जाये। कुछ समय दृष्टि सामने हो और कुछ समय सिर से एक फुट की दूरी पर हो।

इस आसन को करने में प्रारम्भ में कठिनाई हो तो दीवार के सहारे करने का अभ्यास किया जाय।

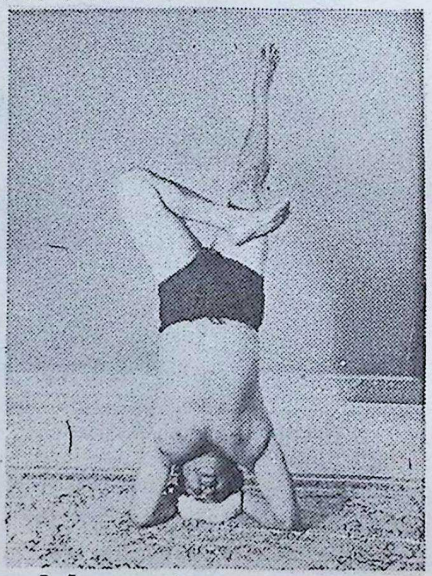

एकपादशीर्षासन—२ (Ekapada Sheershasana)

शीर्षासन करते समय प्राणायाम की क्रिया पर खास ध्यान दिया जाना चाहिए, अन्यथा पूर्ण लाभ न हो सकेगा।

जिस प्रकार की क्रिया करके पाँवों को ऊपर ले-जाया गया, ठीक उसी प्रकार नीचे उतारकर, सिर को ज़मीन से उठाकर, कुछ क्षण सीधे खड़े रहें। उसके पश्चात् शरीर ढीला छोड़कर शवासन की स्थिति में सीधा-उल्टा तथा दोनों करवटों के आधार पर ज़मीन पर सो जावें। अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर शीर्षासन करते हुए अन्य क्रियायें भी करें जैसाकि चित्रों में दिखाया गया है।

लाभ—'हठयोग प्रदीपिका' में शीर्षासन के लाभों का उल्लेख करते हुए लिखा है :

नित्यमभ्यासयुक्तस्य, जठराग्निविवर्धनी ।
आहारो बहुलस्तस्य संपाद्यः साधकस्य च ॥

अर्थात् 'जो साधक नित्य इस शीर्ष-आसन का अभ्यास करता है, उसकी जठराग्नि बढ़ती है। उसे अच्छी तरह से पेट भरकर भोजन करना चाहिए, पूरा भोजन करना चाहिए।'

काल पर विजय प्राप्त करने के सम्बन्ध में लिखा है :

वलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्वं न दृश्यते ।
याममत्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु कालजित् ॥

अर्थात् 'छः मास तक इस आसन का अभ्यास करने से बालों का पकना और झरना दूर होता है। तीन घण्टे रोज़ अभ्यास करने से काल पर विजय प्राप्त होती है।'

कुरुतेऽमृतपानं यः सिद्धानां समतामिदम् ।
स सेव्यः सर्वलोकानां बन्धमेनं करोति यः ॥

अर्थात् 'जो व्यक्ति शरीरस्थ चन्द्रामृत का पान इस आसन के अभ्यास द्वारा करता है, वह सिद्ध-समान होता है जो सर्व लोकों में पूजा जाता है।'

नेत्रों की ज्योति की रक्षा के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है :

'पुनर्दारः पुनर्वित्तं न च नेत्रं पुनः पुनः ।'

अर्थात् 'स्त्री और धन बार-बार मिल जाते हैं, नेत्र नहीं।

परन्तु भारतवासी इस ओर बहुत ही लापरवाही करते हैं, जिसका

यह परिणाम निकला है कि आजकल दुनिया में चश्मा लगानेवालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

वेद ने हमें उपदेश दिया है कि

'पश्येम शरदः शतम्।'

अर्थात् 'हम सौ वर्ष तक देखें।' यह तभी सम्भव होगा जब हम अपने नेत्रों की सावधानी से रक्षा करेंगे। बिना आँखों की ज्योति के इन्सानों के लिए संसार के समस्त धन बेकार हैं। उनके लिए संसार सूना और अन्धकारमय बन जाता है। शीर्षासन से आँखों का हर प्रकार से व्यायाम होता है। यदि विधिपूर्वक आँखों की पुतली घुमाई जाय तो अधिक लाभ होगा; यह विधि किसी जानकार से सीखनी चाहिए। नित्य शीर्षासन करनेवाले को आयुपर्यन्त चश्मा नहीं लगाना पड़ता। आँखें तेज़ बनती हैं।

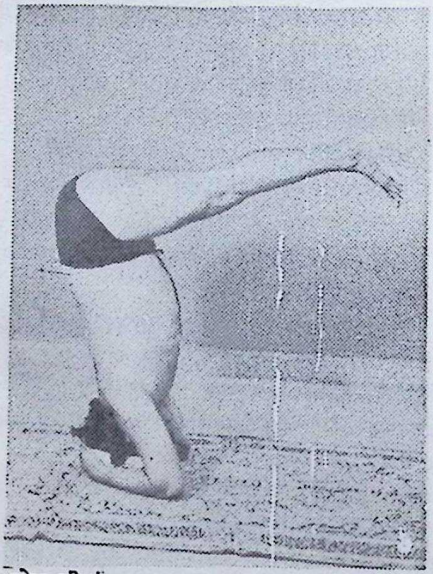

कोन शीर्षासन—३ (Kon-Sheershasana)

वीर्य्य-रक्षा—शीर्षासन करने से खून का प्रवाह शुक्राशय की ओर न जाकर मस्तिष्क की ओर जाता है, जिससे मनुष्य ऊर्ध्वरेता बनता है। वीर्य की ऊर्ध्व गति होने से स्वप्नदोष, धातु, वायु, प्रमेह, आदि रोगों का नाश हो जाता है और वीर्य परिपक्व होकर शरीर में ओज पैदा करता है। शरीर तेजस्वी बनता है। शीघ्र बुढ़ापा नहीं आता। आयु बढ़ती है। पाचन-शक्ति बढ़ती है। सिर के तमाम रोगों, जैसे-कि सिर में चक्कर आना, सिर का भारी हो जाना, कमज़ोर होना, पागलपन, मूर्छा आना आदि से मनुष्य बचता है।

निद्रा—शीर्षासन नित्य करनेवाले को निद्रा खूब आती है। उसे स्वप्न भी नहीं आते। स्मरण-शक्ति बढ़ती है। पेट हल्का रहता है। 'विसेरोपटोसिस' (Visceroptosis) तथा 'हरनिया' (Hernia) जैसे रोग नहीं होते। हिस्टीरिया, न्यूरेस्थेनिया जैसे रोग मिट जाते हैं।

शीर्षासन करने से खून के तथा चमड़ी के रोग नहीं होते। हृदय पुष्ट होता है। प्राणों की स्थिरता रहती है। मनुष्य-शरीर के सब तंत्रों और खासकर नाड़ीतन्त्र (Nervous system), जो मानसिक और शारीरिक परिस्थिति को नियंत्रित करता है उसे स्वस्थ रखता है। मानसिक तथा शारीरिक रीलेक्सेशन (Relaxation) के लिए शीर्षासन बहुत ही अच्छा है।

गर्भावस्था में स्त्रियों को तथा Congested Throat जैसे रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

आयु तथा शरीर की स्थिति को ध्यान में रखकर इस आसन के समय में फेरफार किया जाना चाहिए।

नवजीवन देनेवाले, शरीर में कायाकल्प करनेवाले 'शीर्षासन' को नित्य करनेवाले को अपार आनन्द प्राप्त होता है। मोक्ष-प्राप्ति के चाहक, मृत्यु पर विजय पाने के इच्छुक इस आसन का निरन्तर अभ्यास बढ़ाते रहते हैं।

सुख, शान्ति और समृद्धि के चाहकों को शीर्षासन अवश्य करना चाहिए।

ऊर्ध्वपद्मासन

शीर्षासन करके, सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे दोनों टाँगें मोडकर

पद्मासन लगाने से ऊर्ध्वपद्मासन होता है।

शीर्षासन सिद्ध हो जाने पर ही इस आसन को शुरू करें, नहीं तो गिर जाने की सम्भावना रहती है। गिरने से हानि होती है। कमज़ोर

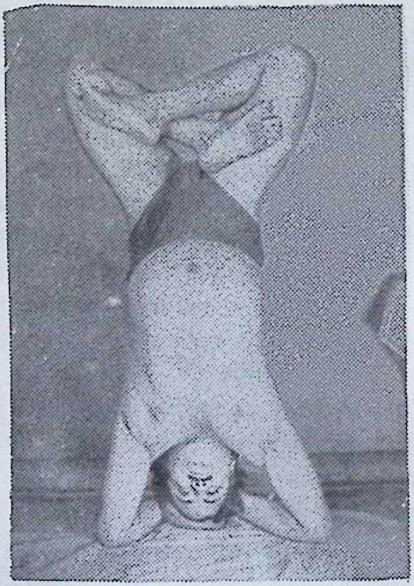

ऊर्ध्वपद्मासन (Urdhvapadmasana)

शरीरवाला व्यक्ति यह आसन न करे। नुकसान होने का भय रहता है।

लाभ—ऊर्ध्वपद्मासन की अवस्था में की गई प्रभु-प्रार्थना का फल शीघ्र मिलता है। प्राचीन युग में तपस्वी लोग उल्टे होकर 'शीर्षासन' अथवा 'ऊर्ध्वपद्मासन' अथवा इसी प्रकार के किसी आसन से अपने इष्ट-देव की आराधना करके सिद्धि प्राप्त करते थे। इस विषय में हमें महाभारत तथा अनेक पुराणों में इसके उदाहरण मिलते हैं। शीर्षासन के जो लाभ हैं, वे सब इस आसन के करने से मिलते हैं। इस आसन

से शरीर पर संपूर्ण प्रभुत्त्व प्राप्त होता है। बाल गिरने बन्द होते हैं। आँखों की ज्योति बढ़ती है। स्मरणशक्ति बढ़ती है। स्वप्नदोष की बीमारी दूर हो जाती है। उम्र बढ़ती है। शरीर सुन्दर और सुडौल होकर तेजस्वी बन जाता है।

स्त्रियाँ इस आसन को न करें।

पद्मशिरनाभिस्पर्शासन

शीर्षासन की अवस्था में पद्मासन करके नाभि को स्पर्श करने के कारण इस आसन को 'पद्मशिरनाभिस्पर्शासन' कहते हैं।

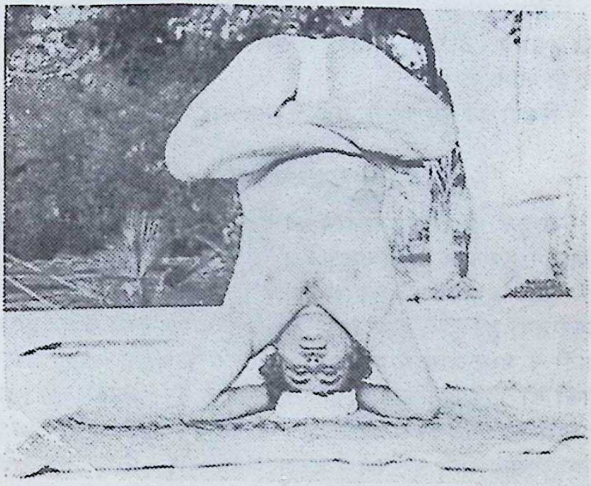

पद्मशिरनाभिस्पर्शासन

(Padma-Shira-Nabhi-Sparshasana)

विधि--सिर के नीचे कोई नरम कपड़ा आदि रखकर, शीर्षासन करके, उसी अवस्था में 'पद्मासन' लगावें; फिर धीरे-धीरे मुड़ी हुई, (पद्मासन की अवस्था में) टाँगों को तथा पैरों को पेट से लगाकर

नाभि का स्पर्श करें। यह आसन, 'शीर्षासन' सिद्ध हो जाने के पश्चात् 'पद्मासन' सिद्ध होने पर बड़ी सावधानी से करें। यह आसन करते समय 'पूरक' करें। 'पद्मासन' लगाने से पूर्व 'रेचक' करके उसके पश्चात् नाभि को स्पर्श करें।

लाभ—इस आसन से शरीर की कमज़ोरी दूर होती है। शरीर तेजस्वी बनता है। खून की खराबी तथा चमड़ी के रोग दूर होते हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है। मुखड़ा सुन्दर बनता है। आँखों की ज्योति बढ़ती है। पेट की बीमारियाँ समाप्त हो जाती हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। हृदय मज़बूत बनता है। जुकाम में इस आसन को करने से जल्दी लाभ पहुँचता है। हरनिया (Hernia) रोग मिट जाता है। विसेरोपटोसिस (Visceroptosis) जैसा रोग मिट जाता है जिससे बढ़ा हुआ पेट ठीक हो जाता है। स्वप्नदोष तथा प्रमेह की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं।

स्त्रियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।

सूर्यनमस्कार

सम्पूर्ण सूर्यनमस्कार करने की दस क्रियाएँ-अवस्थाएँ हैं। इनका संक्षेप में हम नीचे वर्णन करते हैं।

(१) प्रथम क्रिया को 'अवस्थान' कहते हैं। इसमें सीधे खड़े रहें। कमर तनी हुई हो। हाथ छाती से सटे हुए, एक-दूसरे से दबे हुए हों। छाती के मध्य-भाग में जो गड्ढा है, हाथ के अंगूठे उसमें टिकावें। बाकी की चार अंगुलियाँ मिलाकर अंगूठों से दूर फैलाकर रखें। छाती निकालें और पेट को अन्दर ले-जाने की कोशिश करें। फेफड़े फुलावें। दृष्टि नासाग्र-भाग पर रखें। शरीर, गर्दन और मस्तिष्क एक रेखा में तने हुए रखें। (चित्र में देखें) बुलन्द आवाज़ में 'ओ३म्' का उच्चारण करें। धीरे-धीरे आवाज़ को मन्द करें। इस प्रकार तीन बार करें। फिर 'पूरक' अर्थात् मुँह बन्द करके नाक से ध्वनियुक्त पूर्ण श्वास भीतर लें और फिर 'कुम्भक' (अर्थात् 'पूरक' से भीतर ली हुई वायु को रोक रखें) करें।

(२) दूसरी अवस्था को 'जानुनस' कहते हैं। इसमें पहली अवस्था

में किये गये 'कुम्भक' को क़ायम रखकर, टाँगें सीधी रखते हुए नीचे झुकें। दोनों हाथों को ज़मीन पर रखें। फिर नाक को दोनों टाँगों के मध्य-भाग में लगावें और ध्वनियुक्त 'रेचक' (अर्थात् 'कुम्भक' में रोकी हुई वायु को नाक द्वारा बाहर निकालना) करें। पेट को अन्दर खींचने से यह आसन सरलता से होगा। इस आसन को करते हुए मन में यह भाव लावें कि 'मुझे तेजस्वी, शक्तिशाली, नीरोग बनना है।'

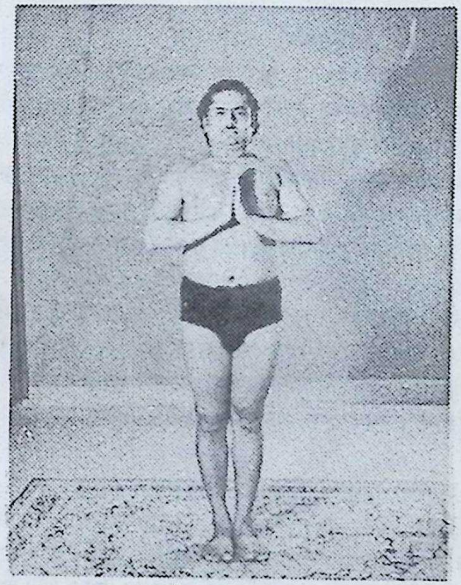

सूर्यनमस्कार—१

(Surya-Namaskarasana)

(३) तीसरी अवस्था को 'ऊर्ध्वेक्षण' कहते हैं। इसमें 'पूरक' (अर्थात् ध्वनियुक्त साँस अन्दर लेना) करके भुजाएँ सीधी रखते हुए एक पैर पीछे ले-जावें और उस पैर का घुटना और उसकी अंगुलियाँ ज़मीन

परं रखें। दूसरे पैर का घुटना काँख के नीचे से भुजा के सामने लावें। सिर को पीछे की ओर ले-जावें। दृष्टि आकाश की ओर रखें। पीठ और कमर झुकावें। 'कुम्भक' करें। क्रमशः दोनों पैर बदलकर आगे-पीछे ले-जावें।

(४) चौथी अवस्था को 'तुलितवपु' कहते हैं। 'कुम्भक' को क़ायम रखते हुए, दोनों पैर पीछे रखें। पैर के दोनों अंगूठे, घोंटे और दोनों घुटने सटे हुए रखें। भुजाएँ सीधी रखें। एड़ी, पीठ, सिर, सब एक रेखा में रखें। दोनों हथेलियों और दोनों पैरों की अंगुलियों पर सारे शरीर का वज़न रखें। 'कुम्भक' क़ायम रखें।

(५) पाँचवीं अवस्था को 'साष्टांग' कहते हैं। इसमें 'कुम्भक' को न छोड़ते हुए, घुटने ज़मीन से लगावें। हाथ के तलवे तथा पैर अपने स्थान पर रहें, इसका पूरा खयाल रखें। ठुड्डी गले के नीचे के भाग से लगावें। नासिकाग्र-भाग को ज़मीन से स्पर्श करावें। भाल का ऊपरी भाग तथा छाती को भी साथ-साथ ज़मीन से स्पर्श करावें। पेट का भाग ऊपर ले-जावें और ध्वनियुक्त 'रेचक' (श्वास बाहर निकालना) करें।

(६) छठी अवस्था को 'कशेरुसंकोच' कहते हैं। इसमें पाँचवीं अवस्था से आगे बढ़ते हुए पैर, घुटने और हाथ के पंजे स्थिर रखकर भुजाएँ सीधी करें। ध्वनियुक्त 'पूरक' करके छाती सामने ले-जावें, पीठ को झुकावें। सिर पीछे झुकाकर, दृष्टि ऊपर रखकर 'कुम्भक' करें।

(७) सातवीं अवस्था को 'कशेरुविकास' कहते हैं। इसमें 'कुम्भक' क़ायम रखते हुए, पैरों को सीधा करें। भुजाएँ सीधी रखें और सिर दोनों हाथों के मध्य-भाग में रखें। ठुड्डी को छाती से लगावें। पैरों तथा हाथों के तलवे ज़मीन से लगे हुए हों और सीधे हों, इसका पूरा खयाल रखें। 'कुम्भक' क़ायम रखें।

(८) आठवीं अवस्था को 'ऊर्ध्वेक्षण' कहते हैं। यह अवस्था तीसरी अवस्था के समान है। भुजाएँ सीधी रखें। एक पाँव आगे लावें और दोनों हाथों के तलवों के मध्य-भाग में रखें। इस पैर का घुटना भुजा के भीतर से सामने लावें। पैर का तलवा ज़मीन से लगा हुआ रहे।

दूसरे पैर का घुटना ज़मीन से स्पर्श करे और पाँव की एड़ी उठी हुई रहे। इस प्रकार तीसरी अवस्था में बताये अनुसार गर्दन और सिर पीछे रहना चाहिये और दृष्टि ऊपर रखें। कमर और पीठ झुकी हुई हों। 'कुम्भक' क़ायम रखें।

(९) नौवीं अवस्था बिलकुल दूसरी अवस्था है। पेट अन्दर ले-जाकर नाक और कपाल दोनों घुटनों के बीच में लगावें और ध्वनि-युक्त 'रेचक' करें।

(१०) दसवीं अवस्था, प्रथम अवस्था है। ध्वनियुक्त 'पूरक' करके खड़े हो जावें। इतना ध्यान रखें कि खड़े होते समय घुटने एक-दूसरे से सटे हुए रहने चाहिएँ।

लाभ—'सूर्यनमस्कार' से स्नायु तथा अन्तरेन्द्रियाँ बलवान् बनती हैं। (१) प्रथम अवस्था से पैरों का टेढ़ापन दूर होता है। भुजाओं के पीछे के त्रिशिख (Triceps) मज़बूत बनते हैं। जठराग्नि तेज़ होती है। गर्दन-पुट्ठे सशक्त होते हैं।

(२) दूसरी अवस्था से हाथ की अंगुलियाँ, पिंडलियाँ तथा टाँगों के पीछे के भाग की स्नायु एवं पेट, नितंब, पीठ, अन्तड़ियों की स्नायु का अच्छा व्यायाम होता है। ये सशक्त बनती हैं। नाभि के पास तन्तुजाल (Solarplexus) उत्तेजित होकर शक्तिशाली बनता है।

(३) तीसरी अवस्था से गले, गर्दन, पीठ और कमर का अच्छा व्यायाम होता है। क्रमशः पैर आगे-पीछे ले-जाने से 'यकृत' पर दबाव पड़ता है। यह स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हितकर है।

(४) चौथी अवस्था से गले, भुजाओं, हथेलियों और पैर की अंगुलियों पर सारे शरीर का वज़न पड़ता है। इससे हाथ और पैर-सम्बन्धी कोई शिकायत नहीं रहती और ये शक्तिशाली बनते हैं।

(५) पाँचवीं अवस्था से कण्ठमणि के पास कंठग्रंथी (Thyroid gland) बलवान् और नीरोग बनती है। घुटने, हाथ, भुजाएँ और कलाइयाँ मज़बूत बनती हैं। उदर और नितंब की स्नायुएँ पुष्ट हो जाती हैं और गर्दन मज़बूत बनती है।

(६) छठी अवस्था में गर्दन, गला, कंठग्रंथी (Thyroid gland), पीठ, पेट, और भुजाएँ सुन्दर तथा बलवान् बनती हैं। पाचनशक्ति

बढ़ती है। गले और पेट की तमाम बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। आँखों की ज्योति बढ़ती है। त्रिशिल स्नायु (Triceps) मज़बूत होती हैं। फेफड़े विस्तृत होकर छाती चौड़ी बनती है। बढ़ा हुआ पेट कम हो जाता है। यकृत और तिल्ली के रोग समाप्त हो जाते हैं। 'गंडमाला' जैसे रोग दूर हो जाते हैं। रीढ़ की हड्डी मुड़ने से ज्ञानतंतुजाल उत्तेजित होता है, जिससे मस्तिष्क तेज़ होता है और स्मरणशक्ति बढ़ती है।

(७) सातवीं अवस्था से पैर, पिंडली, नितंब, पेट, पीठ, गर्दन, गला, भुजाएँ शक्तिशाली बनते हैं तथा सिर के तमाम रोग दूर हो जाते हैं।

(८-९-१०) इन अवस्थाओं के लाभ क्रमशः तीसरी एवं दूसरी अवस्थाओं के समान हैं। नित्य विधिपूर्वक 'सूर्यनमस्कार' करनेवाला व्यक्ति कभी बीमार नहीं पड़ता। वेदोक्त 'जीवेम शरदः शतम्' के अनुसार मनुष्य सौ वर्ष तक नीरोग होकर सुखपूर्वक जीवन जी सकता है।

गर्भावस्था में स्त्रियाँ सूर्यनमस्कार न करें।

ताड़ासन

इस आसन की स्थिति ताड़-खजूर-नारियल के पेड़ जैसी होने के कारण इसे ताड़ासन कहते हैं।

विधि—स्वच्छ स्थान पर बिल्कुल सीधे खड़े हो जावें। दोनों पैर मिले हुए हों। प्रथम दाहिनी भुजा उठाकर कन्धों की सीध में फैलावें। उसके पश्चात् ऊपर आकाश की ओर उठावें। इस प्रकार दूसरी भुजा भी उठावें। दोनों भुजाएँ ऊपर की ओर खींचकर रखें। 'पूरक' अर्थात् नाक से श्वास लेकर उदर में वायु भरकर 'कुम्भक' अर्थात् वायु को भीतर रोककर, एड़ियों को उठाकर, पंजों के बल पर खड़े रहें। शरीर को ऊपर इस प्रकार खींचें जैसे आप छत को छूना चाहते हों। ऐसी स्थिति में अच्छा अभ्यास हो जाने पर, पाँव के पंजों पर चलने का अभ्यास करें। पाँव और हाथ नीचे रखकर 'रेचक' (श्वास निकालना) करें।

लाभ—इस आसन से भुजाओं, टाँगों, छाती एवं कमर के खिचाव मे इनका विकास होता है। स्फूर्ति और उत्साह आता है। आलस्य

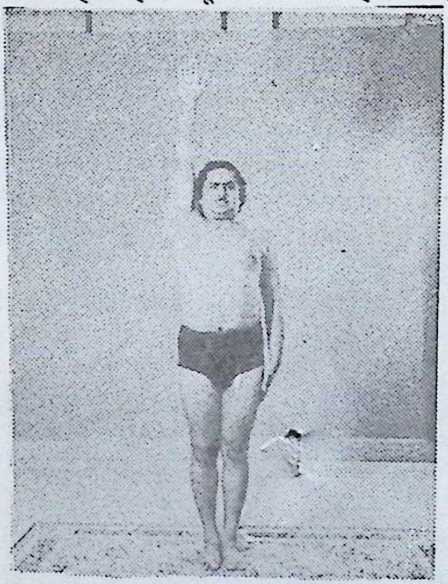

ताड़ासन (Tarasana)

दूर हो जाता है। शरीर की लम्बाई बढ़ती है। छोटे कद वालों को यह आसन अवश्य करना चाहिये। पेट का भारीपन दूर होकर पतला होने लगता है। बड़ी आयु में जो कम्पन होता है वह नहीं होता। भुजाओं, टाँगों और जाँघों की पेशियाँ शक्तिशाली बनती हैं। हृदय बलवान् बनता है, जिससे हृदय-रोग नहीं होता। फेफड़ों में शक्ति बढ़ती है।

प्रातःकाल 'ताड़ासन' करके चलनेवाले को शौच साफ़ आता है। कब्जियत दूर हो जाती है। चूर्ण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पेट साफ़ रहता है। स्त्रियाँ भी इस आसन को कर सकती हैं। स्त्रियों के लिए यह आसन लाभदायक है।

एकपादासन

एक पैर पर खड़े होकर, दूसरे पैर को पद्मासन की स्थिति में रखने के कारण, इस आसन को 'एकपादासन' कहते हैं।

विधि—सीधा खड़ा होकर, 'रेचक' करके श्वास बाहर निकालें। उसके पश्चात् एक पैर को घुटने से मोड़कर जंघामूल में रखें। 'कुम्भक' क़ायम रखते हुए, दोनों हाथों के अंगूठों के पासवाली अंगुली को अंगूठे के मूल में लगाकर दोनों हाथों को चित्र में बताये अनुसार सामने सीधा रखें। दृष्टि बिलकुल सीधी रखें। क्रमशः पैर बदलते समय 'पूरक' तथा 'रेचक' गहराई से करें।

लाभ—यह आसन मानसिक शान्ति देनेवाला है। इस आसन की अवस्था में की गई प्रभु-प्रार्थना से बहुत लाभ होता है। प्रभु-भक्ति

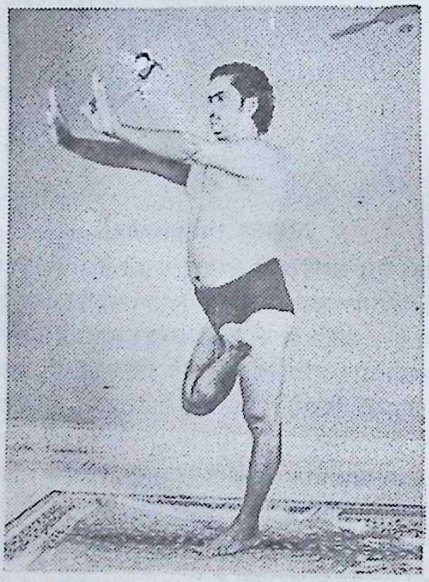

एकपादासन (Ekapadasana)

में मन लगता है। प्राचीन काल में ऋषि इस आसन को लगाकर नदी-तट पर अथवा किसी एकान्त स्थान में घण्टों तपस्या करते थे। इस आसन से आलस्य दूर होता है। टाँगें मज़बूत होती हैं। इस आसन में अच्छी सिद्धि प्राप्त हो जाने पर इष्ट की प्राप्ति होती है और मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

स्त्रियाँ भी इस आसन को कर सकती हैं।

महावीरासन

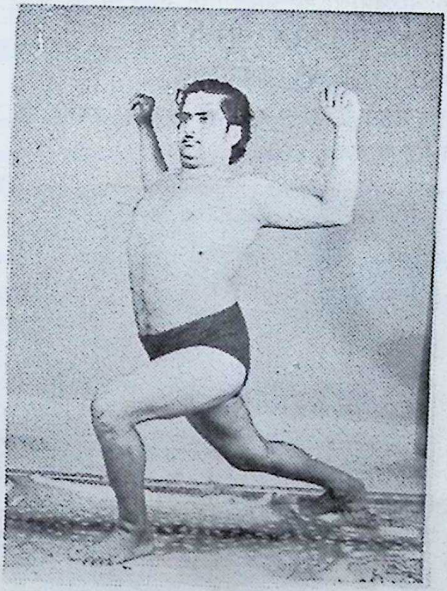

महावीरासन (Mahavirasana)

इस आसन से महावीर हनुमान की-सी शरीर की अवस्था बनती है, इसलिये इस आसन को 'महावीरासन' कहते हैं।

विधि—सीधे खड़े होकर 'पूरक' करके श्वास लें, उसके पश्चात् 'कुम्भक' क़ायम रखते हुए, किसी एक पैर को लगभग ३ फुट आगे

बढ़ावें। फिर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बन्द करके ऊपर उठावें, जैसा-कि चित्र में बताया गया है। क्रमशः पैरों को बदलते रहें। थक जाने पर रुककर 'रेचक' और उसके पश्चात् 'पूरक' क्रमशः किया करें। धीरे-धीरे पैर आगे-पीछे ले-जाने की गति को तेज़ करना चाहिये।

लाभ—इस आसन से छाती (Thorax) का विकास होता है। हाथ-पाँव मज़बूत बनते हैं। पेट हल्का हो जाता है। क़द बढ़ता है। कमर पतली हो जाती है। शरीर शक्तिशाली और तेजस्वी बनता है। स्वास्थ्य चाहनेवालों को यह आसन नित्य करना चाहिये।

स्त्रियाँ इस आसन को कर सकती हैं।

उत्कटासन

कुर्सी पर बैठने से शरीर की जो स्थिति बनती है, ठीक उसी आकार का यह आसन है।

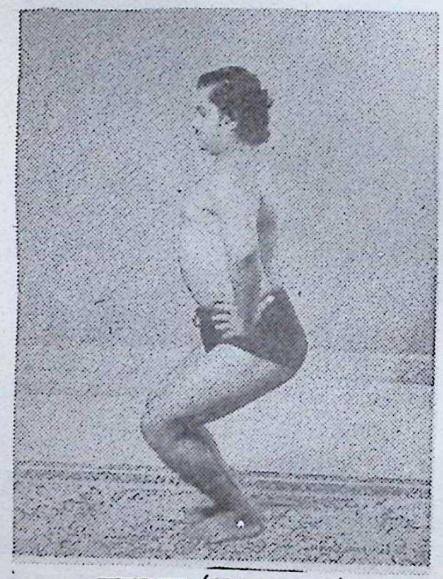

उत्कटासन (Utkatasana)

विधि—भूमि पर सीधे खड़े हो जावें। पैरों में एक फुट का अन्तर रखें। दोनों हाथ कमर पर रखकर 'पूरक' (श्वास लेना) करके धीरे-धीरे झुककर कुर्सी पर बैठने-जैसी स्थिति बनावें। सारा वज़न टाँगों के घुटनों के नीचे पाँवों तक आना चाहिये। सुविधा-अनुसार इस स्थिति में रहकर ऊपर उठें और 'रेचक' करके श्वास को निकालें। तब तक कुर्सी की अवस्था में 'कुम्भक' क़ायम रखें।

इस प्रकार अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर, कुर्सी की स्थिति से भी नीचे शरीर को ले-जावें। पैरों के पंजों पर सारे शरीर का वज़न आवे। नितम्ब (चूतड़) पैर की एड़ी की सीध में रखें। यह आकार ठीक उसी प्रकार का बनता है जैसे कोई व्यक्ति शौच (टट्टी) के लिए बैठा हो। अन्तर सिर्फ़ इतना है कि इसमें सारा वज़न पैर के पंजों पर ही रहता है और पैरों की एड़ियाँ उठी हुई होतीं हैं।

लाभ—इस आसन से टाँगें मज़बूत बनती हैं। रीढ़ और घुटने लचकीले बनते हैं। पाँव में आनेवाली सूजन नहीं होती। वायुनाशक है। इससे घुटनों में होनेवाला दर्द दूर हो जाता है, जिससे चलने-फिरने में कोई कठिनाई नहीं होती। पेट को साफ़ करता है।

स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं।

त्रिकोणासन

इस आसन को करते समय शरीर त्रिभुज या त्रिकोण के समान हो जाता है; इसलिये इसे 'त्रिकोणासन' कहते हैं।

विधि—सावधान की सीधी स्थिति में खड़े हो जावें। दोनों पाँव दो फुट की दूरी तक फैला दें। एक पाँव को बग़ल की ओर मोड़िये। पाँव को इतना मोड़िये कि वह समकोण की स्थिति में हो जाये। उसके पश्चात् 'रेचक' (श्वास निकालना) करके, जो पाँव मोड़ा हो उसी ओर के हाथ से उस पाँव के अंगूठे को स्पर्श करें। दूसरा हाथ सिर की तरफ़ ऐसे खींचकर लगावें जिससे वह उस ओर के कान का स्पर्श कर सके, जैसाकि चित्र में बताया गया है। इसी प्रकार दूसरे पैर को मोड़कर दूसरी ओर करें। इस आसन को सावधानीपूर्वक करें। इस आसन को करते समय शरीर में शिथिलता नहीं आनी चाहिये।

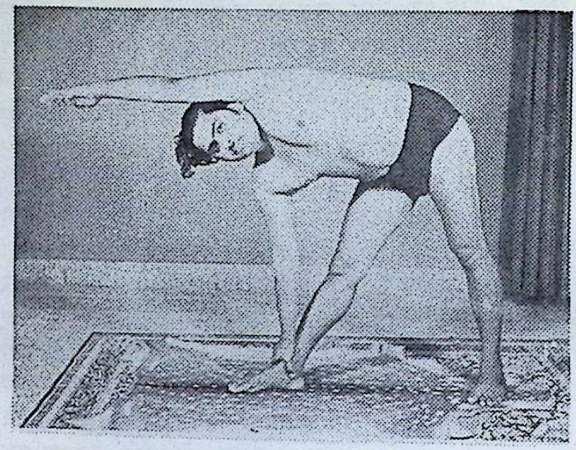

त्रिकोणासन—१ (Trikonasana)

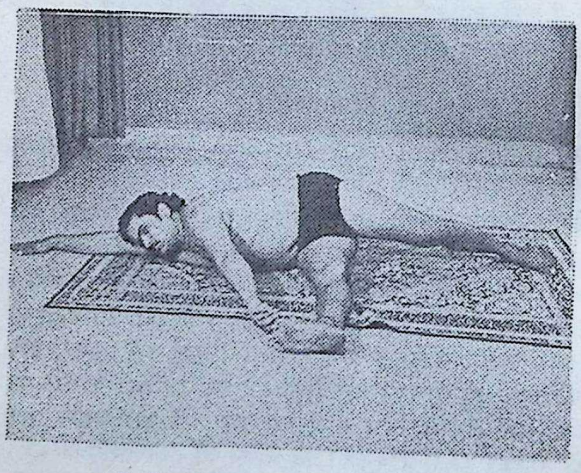

सुप्तत्रिकोणासन-२ (Supta-Trikonasana)

धीरे-धीरे इसे करें। एक तरफ़ कर लेने पर जब सीधे खड़े हो जावें तब 'पूरक' (श्वास लेना) करें, तब तक 'कुम्भक' (श्वास रोकना) क़ायम रखें।

लाभ—इस आसन से नाड़ीतन्त्र (Nervous System) में चेतना पैदा होती है। हाथ-पाँवों में शक्ति पैदा होती है। पेट की गैस निकल जाती है। पेट का मोटापा दूर हो जाता है। पाचनशक्ति तेज़ हो जाती है। दिल मज़बूत बनता है। शरीर सुडौल हो जाता है।

जिनका दिल कमज़ोर हो और खड़े होकर यह आसन न कर सकते हों, वे ज़मीन पर लेटकर सरलता से कर सकते हैं।

मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) में लचक बढ़ती है, जिससे शरीर में स्फूर्ति आती है। कमर के दर्द दूर हो जाते हैं। गृध्रसीवायु में इस आसन से बहुत अच्छा लाभ होता है। भूख बढ़ती है। पेट स्वच्छ रहता है।

गर्भावस्था में स्त्रियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।

पद्मासन

इस आसन के करने से पाँवों का आकार 'कमल' जैसा होने के कारण इसको 'कमलासन' भी कहते हैं।

विधि—सर्वप्रथम ज़मीन पर बैठकर, टाँगें सीधी करके, दोनों पाँव मिलाकर रखें। उसके पश्चात् दाहिना पैर बाईं जंघा पर और बायाँ पैर दाहिनी जंघा पर इस प्रकार रखें, जिससे दोनों पैरों की एड़ियाँ नाभि के दोनों ओर पेट से सटी हुई हों। हाथों को घुटनों पर रखें। कमर, छाती, सिर आदि सारा भाग सीधा और तना हुआ रखें। दोनों पाँवों के घुटने ज़मीन से मिले हुए रहने चाहिएँ। दृष्टि साधारण बन्द रखनी चाहिये। इस आसन को करते समय 'प्राणायाम' की विधि का पूरा ध्यान रखें जो योग्य गुरु से सीखें।

'पद्मासन' को शुरू में एक मिनट से क्रमशः बढ़ाकर घण्टों तक ले-जा सकते हैं।

लाभ—चंचल मन को स्थिर करने के लिए यह आसन बहुत ही अच्छा है। मानसिक कार्य करनेवाले, गहन चिन्तन करनेवाले तथा

विद्यार्थियों के लिए यह आसन रामबाण का कार्य करता है। वीर्य-रक्षा के लिए यह आसन बेजोड़ है। वात-पित्त-कफ़ आदि दोषों का

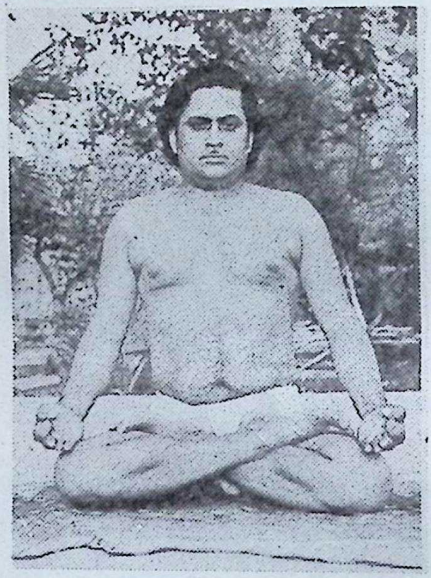

पद्मासन (Padmasana)

नाश करता है। सुख-शान्ति और शक्ति को बढ़ाता है; आयुवर्द्धक है। स्वप्नदोष एवं प्रमेह के रोगों का नाश करता है। स्मरण-शक्ति बढ़ाता है। पेट के रोग दूर हो जाते हैं। स्त्रियों के गर्भाशय-संबंधी रोगों को दूर करता है।

यम-नियमपूर्वक पद्मासन में अधिक समय बैठने से प्राण-अपान की एकता होकर 'कुण्डलिनी' जाग्रत् होती है।

घेरण्ड, शांडिल्य तथा अन्य कई ऋषियों ने इस आसन की बहुत ही महिमा बताई है। ध्यान लगाने के लिए यह आसन अति लाभ-दायक है।

इस आसन को स्त्री-पुरुष दोनों कर सकते हैं।

सिद्धासन

अलौकिक सिद्धियों को देनेवाला होने के कारण इस आसन को सिद्धासन कहते हैं।

'यमों' में जैसे 'ब्रह्मचर्य' श्रेष्ठ है, 'नियमों' में 'शौच' उत्तम है, ठीक इसी प्रकार आसनों में सिद्धासन श्रेष्ठ है।

विधि—ज़मीन पर सीधे बैठकर, बायें पैर की एड़ी को अण्ड-कोष और गुदा के मध्य-भाग में दबाकर लगावें और दायें पैर की एड़ी को इन्द्री तथा नाभि के मध्य स्थान पर, बायें पैर की एड़ी की सीध में दबाकर रखें। कमर, पीठ, छाती, गर्दन, सिर, मतलब यह कि सारा शरीर सीधा रखना चाहिए। हाथों को घुटनों पर अथवा पैरों के पंजों पर रखा जा सकता है। दृष्टि न खुली हो न बिलकुल बन्द। साधारण आँखें बन्द करके अपने अन्दर झाँकने का अभ्यास

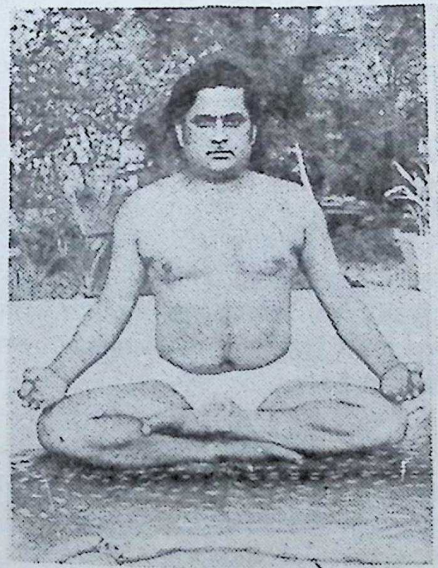

सिद्धासन (Siddhasana)

करें। सरलता से जितना समय बैठ सकें, उतना ही बैठें। क्रमशः समय को बढ़ाते रहें। पर्याप्त समय बैठने का अभ्यास हो जाने पर योग्य गुरु से प्राणायाम की विधि सीखकर उसका अभ्यास करें।

सिद्धासन को करते समय गुदा, मूत्रेन्द्रिय एवं पेट को अन्दर-ऊपर सरलता से खींचने का अभ्यास करें। यह आसन संध्या के दोनों कालों में किसी एकान्त-शान्त-पवित्र स्थान पर अथवा नदी के किनारे करना चाहिए।

लाभ—इस आसन का विधिपूर्वक अभ्यास करने से मन की एकाग्रता होती है। विचार पवित्र बनते हैं। भोग-विलास की तरफ़ जाने से मनुष्य बचता है। ७२ हज़ार नाड़ियों का मैल इस आसन के अभ्यास से दूर होता है। वीर्य की रक्षा होती है। वीर्यवाहिनी नाड़ियों को यह आसन मजबूत बनाता है जिससे वीर्य स्थिर रहता है। 'स्वप्नदोष' के रोगियों को यह आसन अवश्य करना चाहिए। बहुत लाभ होगा।

योगीजन इस आसन द्वारा वीर्य की रक्षा करके प्राणायाम द्वारा उसे मस्तक की ओर ले-जाते हैं, जिससे वीर्य 'ओज' तथा 'मेधा' शक्ति में परिणत होकर 'दिव्यता' और मानसिक शक्ति प्राप्त होती है।

'कुण्डलिनी' जाग्रत् करने की लक्ष्य-सिद्धि के लिए यह आसन प्रथम सीढ़ी है।

सिद्धासन में बैठकर जो पढ़ा जाता है, वह अच्छी तरह याद रह जाता है। विद्यार्थियों के लिए यह आसन विशेष लाभदायक है। इस आसन से पाचनशक्ति तेज़ होती है। दिमाग़ स्थिर बनता है, जिससे स्मरणशक्ति बढ़ती है।

५. स्वस्तिकासन

'स्वस्तिक' का अर्थ है कल्याणकारी। कल्याण करनेवाला होने के कारण ही इसको 'स्वस्तिक' आसन कहते हैं।

विधि—शास्त्रकारों ने 'स्वस्तिकासन' के लक्षण का इस प्रकार उल्लेख किया है—

जानोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे,
समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते ।। (योग-सार)

अर्थात् जानु और जंघा के मध्य-भाग में दोनों पादतलों को भली प्रकार लगाकर ग्रीवा, छाती और मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठने से 'स्वस्तिकासन' बनता है ।

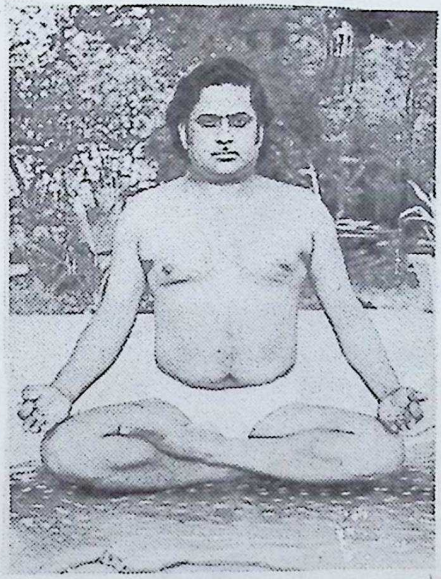

स्वस्तिकासन (Swastikasana)

ज़मीन पर बैठकर, पाँव लगाकर, प्रथम दाएँ पाँव को मोड़कर उस पाँव का पंजा बायीं टाँग के घुटने की सन्धि में लगावें । उसके पश्चात् बाएँ पैर के पंजे को दाईं टाँग की संधि में नीचे से ले-जावें । दोनों पैर दोनों पिण्डलियों में लगे रहें । दोनों हाथों को सीधा रख-कर दोनों घुटनों पर 'ज्ञानमुद्रा' में रखें । दृष्टि नासाग्र-भाग पर रखें ।

लाभ—इस आसन में सरलता से काफी समय बैठा जा सकता

है। ध्यानावस्था अथवा प्राणायाम करते समय जो पद्मासन न कर सकते हों, वे इस आसन में सरलता से कर सकते हैं। मन शान्त और स्थिर बनता है। चंचलता दूर हो जाती है। प्रभु-भक्ति में मन लगता है।

सर्वाङ्गासन

ज़मीन पर लेटकर सम्पूर्ण शरीर को ऊपर उठाने के कारण इस आसन को 'सर्वाङ्गासन' कहते हैं।

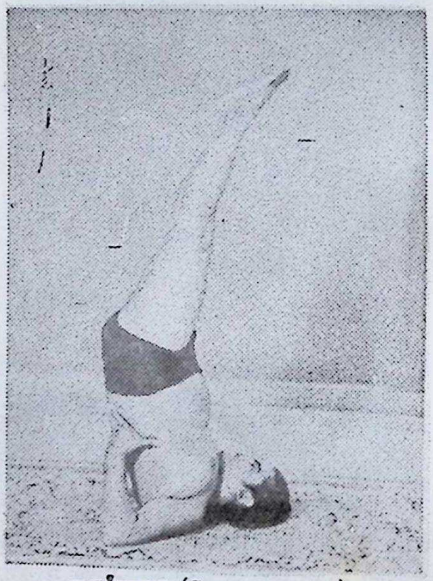

सर्वांगासन (Sarvangasana)

विधि—सर्वप्रथम ज़मीन पर चित लेटकर, दोनों पैर तथा सारा शरीर बिल्कुल सीधा रखें। साँस निकालकर धीरे-धीरे पैरों को सीधा रखते हुए ऊपर उठावें। प्रथम कमर तक पैर उठावें, उसके पश्चात् पीठ का जो भाग ज़मीन पर हो उसे उठाकर दोनों हाथों से

कमर को पकड़कर कन्धों से पैरों तक सारे शरीर को सीधा रखें। पूर्ण अभ्यास हो जाने पर हाथों के सहारे को छोड़कर, हाथों को ज़मीन पर सीधा रखें। दृष्टि दोनों पाँवों के मध्य-भाग में रखें। शरीर का सारा आधार सिर और कन्धे पर ही रहना चाहिए।

ठीक तरह से अभ्भास हो जाने पर, ऊपर उठाई टाँगों को आगे तथा पीछे की तरफ़ सीधा ज़मीन पर लगाने से 'हेलोर्ध्वसर्वाङ्गासन' और एक टाँग के घुटने को मोड़कर उससे कान को छूने से 'कर्ण-पीड़लोर्ध्व सर्वाङ्गासन' होता है। दोनों टाँगों को मोड़कर 'पद्मासन' की स्थिति में लाने से 'ऊर्ध्वसर्वाङ्गासन' हो जाता है। इस प्रकार अन्य कई प्रकार हैं।

लाभ—'हठयोग' शास्त्रकार ने लिखा है—"तालु (मुख के अन्दर जो ऊपर का भाग है) के मूल में आया हुआ 'चन्द्र' में से झरता 'चन्द्रामृत' उसे नाभि में रहा हुआ 'सूर्य' प्रतिक्षण ग्रसा करता है, जिससे मनुष्य धीरे-धीरे वृद्ध होता जाता है। उस 'चन्द्रामृत' के रक्षार्थ (चन्द्रामृत का पोषण शरीर को ही मिले, इस हेतु) जिससे 'सूर्य' के मुख की वंचना हो, ऐसी मुद्रा-रूपी आसन होता है। नित्य अभ्यास करने से जठराग्नि बढ़ानेवाला है। रुचि-अनुसार खुराक बढ़ानी चाहिए। शनैः-शनैः इस आसन का समय बढ़ाते रहने से वलितं (ढीली चमड़ी का हो जाना), पलितं (बाल सफ़ेद होकर झरने लगना) दूर हो जाता है। प्रतिदिन प्रहर-मात्र अभ्यास करने से साधक मृत्यु को जीतता है।"

रसायन-रूपी इस आसन के अभ्यास के अमृत-पान से शरीर-सामर्थ्य में वृद्धि होती है, तीनों दोषों का शमन तथा वीर्य की गति ऊर्ध्व होकर अन्तःकरण की शुद्धि होते हुए मेधाशक्ति बढ़कर चिर-यौवन की प्राप्ति होकर आयुष्य बढ़ता है।

थाइराइड नामक अन्तः-ग्रन्थि की क्षमता इस आसन से बढ़ती है। लीवर (Liver) और प्लीहा के दोष दूर हो जाते हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है। मुख पर से खील और अन्य दाग़ दूर होकर चेहरा (मुख) तेजस्वी बनता है। होजरी और नीचे उतरा हुआ आंतरड़ा अपने मूलस्थान पर स्थिर बनता है। पुरुषातनग्रन्थि पर यह आसन सुन्दर

असर करता है। स्वप्नदोष का रोग दूर हो जाता है। मानसिक श्रम करनेवाले, वकील, डॉक्टर, साहित्यकार एवं विद्यार्थियों को यह आसन अवश्य करना चाहिए।

मंदाग्नि, अजीर्ण, कब्ज़ियत, अर्श, थाइराइड का कम विकास, थोड़े दिनों का एपेंडीसाइटिस और साधारण गाँठ, अंग-विकार, अकाल वृद्धावस्था, दमा, कफ़, चमड़ी के रोग, खून के दोष, स्त्रियों के मासिक धर्म की अनियमितता, मासिक धर्म के समय दर्द का होना, नष्टार्तव (मासिक धर्म न आना), अर्यार्तव (अधिक मासिक आना) आदि रोगों में यह आसन लाभ पहुँचाता है।

थाइराइड के अति विकासवाले, खूब कमज़ोर हृदयवाले और अतिमेदावाले व्यक्तियों को किसी अनुभवी व्यक्ति से सलाह लेकर ही यह आसन करना चाहिए।

इस आसन से नेत्र और मस्तिष्क की शक्तियाँ बढ़ती हैं। सिर तथा नेत्रों के रोग दूर हो जाते हैं।

स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं।

हस्तपादविस्तृतहलासन

लेटकर, सम्पूर्ण शरीर को पीछे की ओर ले-जाकर, जैसा चित्र में बताया है, हाथ-पाँव फैलाकर पकड़े रहने के कारण इस आसन को 'हस्तपादविस्तृतहलासन' कहते हैं। इस आसन का आकार ठीक 'हल' जैसा होता है।

विधि—सर्वप्रथम भूमि पर लेट जावें। उसके पश्चात् 'रेचक' करके 'उत्तानपादासन' की स्थिति में आवें, अर्थात् दोनों टाँगों को धीरे-धीरे सीधी रखते हुए भूमि से दो फुट ऊपर ले-जावें। उसके बाद 'सर्वाङ्गासन' की स्थिति में आवें अर्थात् टाँगों को सीधा लेवल में आकाश की तरफ़ ले जावें। अब आकाश की ओर की हुई टाँगों को धीरे-धीरे पीछे की ओर, सिर की तरफ़ ले-जावें। उसके पश्चात् हाथों को भी पीछे ले-जावें। अब हाथों से पैरों के अंगूठों को पकड़ रखें। कठिनाई महसूस होने पर धीरे-धीरे मूल स्थिति में पहुँचें और 'पूरक' करके 'रेचक' करें। आसन की चालू स्थिति में 'कुम्भक' क़ायम रखें; इसका पूरा ध्यान रखें, अन्यथा पूरा लाभ नहीं होगा।

इसमें हाथ पीठ-पीछे और आगे भी रखे जाते हैं। प्राय: लोग हाथ पीछे पीठ की तरफ ज़मीन पर सीधे रखते हैं। इस अवस्था में शरीर का आकार 'हलासन' जैसा होता है; परन्तु अधिक लाभकारक यही है जिसको हमने यहाँ दिया है।

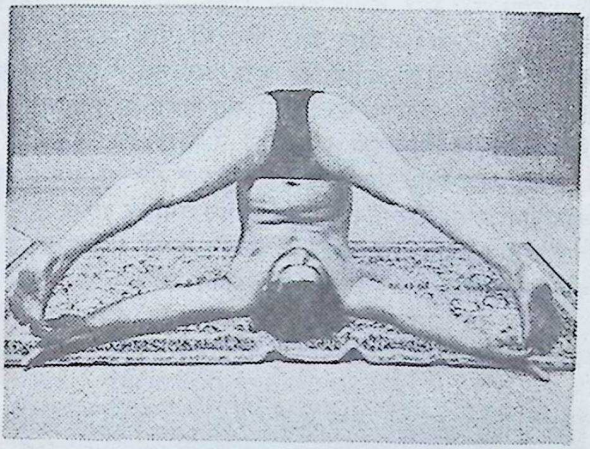

हस्तपादविस्तृतहलासन (Hastapad-Vistritahalasana)

लाभ—'उत्तानपादासन' तथा 'सर्वांगासन' सिद्ध हो जाने पर इस आसन को करने से इन दोनों आसनों में जो लाभ होता है, वह सब इसमें होता है। क़ब्ज़ियत दूर हो जाती है। शरीर सुन्दर और नीरोग बनता है। खून की तमाम खराबियाँ दूर हो जाती हैं। बुढ़ापा जल्दी नहीं आता। पेट की तमाम बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। पेट की गैस की बीमारी का नाश होता है। पेट पर से अनावश्यक चर्बी (fats) दूर हो जाती है। स्मरणशक्ति बढ़ती है। वीर्यनाश-सम्बन्धी सब विकार दूर हो जाते हैं। मेधा-शक्ति बढ़ती है। शरीर में स्फूर्ति रहती है। काम करने में मन लगता है। यह आसन सब लोगों को अवश्य करना चाहिए।

स्त्रियों के अनेक रोग इस आसन से मिटते हैं। स्त्रियाँ गर्भावस्था में यह आसन न करें।

चक्रासन

इस आसन के करते समय शरीर चक्राकार बन जाता है, इसलिए इस आसन को 'चक्रासन' कहा जाता है।

विधि—सर्वप्रथम सीधे खड़े हो जावें। पैरों में थोड़ा अन्तर रखें। हाथों को ऊपर करें। 'पूरक' (श्वास लेना) करके हाथों को पीछे की ओर ले-जावें। सिर और पीठ को पीछे झुकावें। फिर धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक हाथों को भूमि पर रखें। हाथों के पंजे पैरों की ओर रखें। कोशिश करके पैरों तथा हाथों को समीप लाने की कोशिश करें। यह विधि कुछ कठिन है।

दूसरी सरल विधि यह है कि पहले पीठ के बल सो जावें। उसके पश्चात् दोनों हाथों और पाँवों को ज़मीन पर जमाकर शरीर के मध्य-भाग को ऊपर उठावें और शरीर चक्राकार बनावें। सिर को दोनों हाथों के मध्य-भाग में रखते हुए दृष्टि सामने रखें।

लाभ—इस आसन से 'धनुरासन', 'शलभासन' तथा 'भुजंगासन' के तमाम लाभ मिलते हैं। सिर, गले, पीठ, उदर, कटि, भुजाएँ, हाथ,

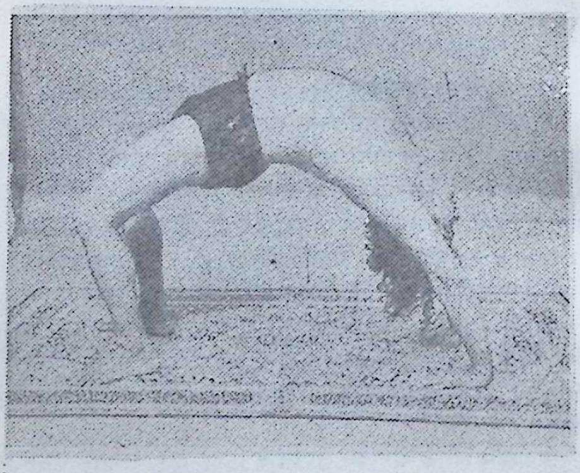

चक्रासन (Chakrasana)

टाँगें, घुटने, पैर आदि शरीर के सारे अंग मज़बूत बनते हैं। जोड़ों में दर्द नहीं होता। पाचनशक्ति बढ़ती है। पेट पर से अनावश्यक चर्बी दूर हो जाती है। शरीर तेजस्वी एवं स्फूर्तिवाला बनता है। विकारी विचारों का नाश हो जाता है। स्वप्नदोष की बीमारी दूर हो जाती है।

इस आसन के नियमित करने से बुढ़ापे में भी कमर नहीं झुकती। शरीर सीधा रहता है।

स्त्रियों को गर्भावस्था में यह आसन नहीं करना चाहिए।

भुजंगासन

भुजंगासन का दूसरा नाम सर्पासन है। इस आसन की आकृति फन फैलाकर उठाये साँप जैसी होने के कारण इसको 'सर्पासन' कहते हैं।

विधि—सर्वप्रथम दोनों पाँव मिलाकर, टाँगें सीधी करके, पेट के बल सो जावें। पाँवों के दोनों अंगूठों को खींचकर रखें। हाथ माथे की ओर ले-जावें। पाँव के अंगूठे, नाभि, छाती, कपाल और हाथों के तलवे ज़मीन पर एक लेवल में रखें। हाथों को धीरे-धीरे कमर की ओर ले-जावें। उसके पश्चात् माथा और छाती पीछे की ओर बिल्कुल धीमी गति से ले-जावें। नाभि का स्थान ज़मीन पर रहे। शरीर का सारा वज़न हाथों के पंजों पर ही रहे। सिर को जितना हो सके, पीछे ले-जाने की कोशिश करें। शरीर की स्थिति कमान-जैसी बन जायेगी और त्रिकास्थि (Sacrum) रीढ़ की हड्डी के अन्तिम भाग पर सारा दबाव केन्द्रित होगा। उस समय दृष्टि को ऊपर छत की ओर स्थिर रखें।

प्रथम यह स्थिति २० सेकण्ड तक रखें। उसके पश्चात् धीरे-धीरे सिर को ज़मीन की ओर ले-जावें। पहले छाती ज़मीन पर रखें, उसके पश्चात् सिर को ज़मीन से लगावें। आसन सिद्ध हो जाने पर, आसन करते समय श्वास भरकर कुम्भक करें और आसन को छोड़ते समय जब मूल स्थिति में आवें, उसके बाद श्वास को बहुत ही धीरे-धीरे छोड़ें।

लाभ—'घेरंड संहिता' में भुजंगासन के लाभों का उल्लेख निम्न प्रकार से आया है—

देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
जागर्ति भुजंगी देवी साधनात् भुजंगासनम् ॥

अर्थात् भुजंगासन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। सब रोगों का नाश होता है और कुण्डलिनी का प्रबोध होता है।

इस आसन के करने से ट्रेपेज़स (Trapezus), लेटीसीमस डोर्सी (Latissimus dorsi), इरेक्टर स्पाईन (Erector Spinae) और ग्लूटीयल मसल्स (Gluteal muscles) का tone और रीढ़ की हड्डी के गर्दनवाले भाग में आए हुए सर्वीकल (Cervical), ऊरोगुहा में आए हुए थोरेसिक (Thoracic), उदरगुहा में आए लम्बर (Lumber) और त्रिकास्थि (Sacrum) का अन्तिम भाग कान की तरह मुड़ता जाता है जिस से वहाँ के एक-एक मणके को और स्नायुओं (Ligaments) को बडे पैमाने पर खून पहुंचता है। परिणामस्वरूप नाड़ी-तन्त्र न सिर्फ

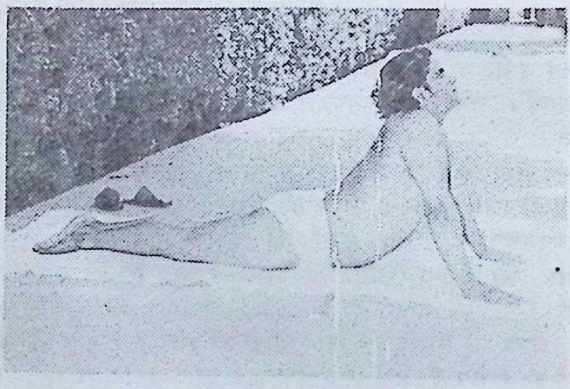

भुजंगासन (Bhujangasana)

चेतन बनता है, अपितु चिरंजीवी, शक्तिशाली और सुदृढ़ बनता है। खासकर मग़ज़ में से निकलनेवाले ज्ञान-तंतु पुष्ट होते हैं। पीठ की हड्डी में रहनेवाली तमाम ख़राबियाँ दूर हो जाती हैं। पेट की स्नायुएँ रेक्टी मसल्स (Recti muscles) खिंचने से वहाँ के अवयवों को शक्ति मिलती है। उदरगुहा में दबाव (Intra-abdominal Pressure) बढ़ने से कब्ज़ियत दूर हो जाती है। छाती और पीठ की तमाम खराबियाँ दूर होकर उनका विकास होता है। संरू गुद्धा के विकास से फेफड़े को पर्याप्त लाभ होता है। गर्भाशय और बोनाशय को ठीक करता है, जिसके कारण 'मासिक धर्म' बिना कष्ट के आता है। 'मासिक धर्म' सम्बन्धी सब शिकायतें दूर हो जाती हैं। गर्भवती स्त्रियाँ यह आसन न करें। अति श्रम करने पर जो थकावट होती है, वह दूर हो जाती है। भोजन करने के पश्चात् वायु का दर्द (Flatulence) आदि दूर होता है। सारे शरीर में स्फूर्ति आती है। कफ-पित्त वालों के लिए यह आसन लाभदायक है। इस आसन के करने से हृदय मज़बूत बनता है।

९९ पवनमुक्तासन

शरीर में रही वायु (पवन) को इस आसन के करने से मुक्ति मिलती है, इसलिये इस आसन को 'पवनमुक्तासन' कहा जाता है।

विधि—सर्वप्रथम भूमि पर सीधे चित लेट जावें। उसके पश्चात् प्राणायाम की 'पूरक' क्रिया करके श्वास भीतर लें। अब किसी एक पैर को घुटने से मोड़कर, दोनों हाथों से मिलाकर, कैंची बनाकर मुड़े हुए पैर को घुटने के पास पकड़कर पेट से लगावें। फिर सिर को भूमि पर से उठाकर नासिका को मुड़े हुए पैर के घुटने से स्पर्श करावें। दूसरा पैर सीधा रखें। यह क्रिया करते समय श्वास न लेकर 'कुम्भक' क़ायम रखें। सिर तथा पैर को भूमि पर रखकर ही 'रेचक' करें। क्रमशः दोनों पैरों को बदलते रहें। दोनों पैरों को साथ में मोड़कर भी यह आसन किया जा सकता है।

लाभ—इस आसन को नियमित करने से पेट की चर्बी (fats) कम हो जाती है। पेट में अफ़ारा आने पर इस आसन को करने से

उससे मुक्ति मिलती है। प्रायः जिनको शौच आने में कोई कठिनाई हो, थोड़ा पानी पीकर इस आसन को १५-२० बार करने से शौच

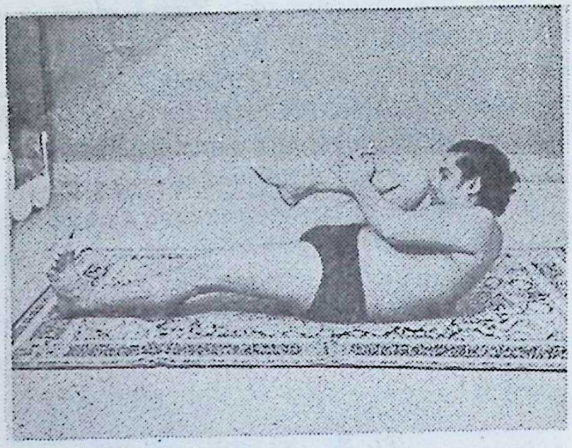

पवनमुक्तासन (Pavanamuktasana)

खुलकर आयेगा। स्मरणशक्ति बढ़ती है। दिमाग़ी काम करनेवाले वकील, डॉक्टर, साहित्यकार, व्यापारी, क्लर्क तथा विद्यार्थियों को यह आसन नियमित अवश्य करना चाहिए।

स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं; परन्तु गर्भावस्था में इस आसन को न करें।

मत्स्यासन

'मत्स्य' को अर्थ है 'मछली'; इस आसन को करके 'प्लावनी' प्राणायाम द्वारा काफ़ी समय तक पानी में तैरा जा सकता है, इसलिये इस आसन को 'मत्स्यासन' कहते हैं।

विधि—पद्मासन लगाकर सीधे बैठ जावें। उसके पश्चात् पीछे की ओर, हाथों के बल, सावधानीपूर्वक लेट जावें। बायें हाथ से दाहिने

हाथ की, और दाहिने हाथ से बायें हाथ की भुजा के पुट्ठों को पकड़ें।

'रेचक' करके कमर ऊपर को उठावें। घुटने, नितंब तथा सिर के शिखाभाग (Vertex) को भूमि से लगा रखें। शिखाभाग के नीचे नरम कपड़ा अवश्य रखें। ठोडी गले के नीचे छाती के ऊपरवाले भाग पर लगावें। उसके पश्चात् दायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को तथा बायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को पकड़ें। 'कुम्भक' की स्थिति में रहकर, दृष्टि को भूमि की ओर से सिर के पास ले-जाने की कोशिश करें। फिर हाथ जोड़कर, कमर ज़मीन पर लगाकर, सिर को उठाकर सीधे बैठ जावें और 'पूरक' करके 'रेचक' करें। ज़मीन पर लेटकर 'पद्मासन' लगाकर भी यह आसन किया जा सकता है।

मत्स्यासन-१ (Matsyasana-1)

लाभ—इस आसन से सम्पूर्ण शरीर मज़बूत बनता है। गले, छाती, पेट आदि की सब बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। आँखों की ज्योति बढ़ती है। गला साफ रहता है। श्वासक्रिया अच्छी बनती है। कंधे की नसें उल्टी मुड़ती हैं, जिसके कारण छाती (Thorax)

और फफड़ों का विकास होता है। पेट साफ़ रहता है। आँतों में रहा मैल, रेक्टम (Rectum) इस आसन से दूर होता है। खून का प्रवाह तेज़ होता है, इस कारण चमड़ी के रोग नहीं होते। दमा और खाँसी दूर हो जाती है। छाती चौड़ी वनती है और पेट की चर्वी कम हो जाती है।

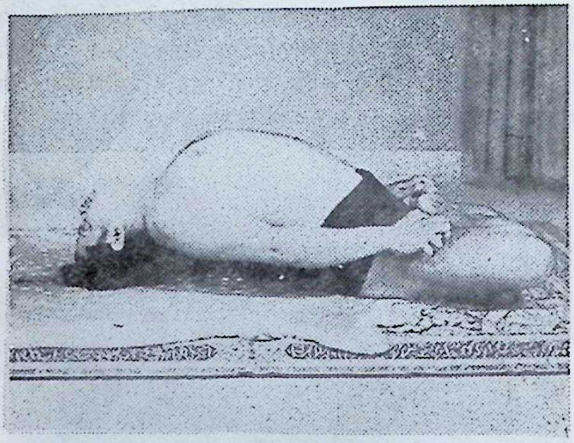

मत्स्यासन-२ (Matsyasana-2)

स्त्रियों के मासिक धर्म सम्वन्धी तमाम रोगों को ठीक करके नियमित बनाता है।

योगमुद्रासन

योगाभ्यास में यह मुद्रा वहुत महत्त्व रखती है, इसलिए इस आसन का नाम 'योगामुद्रासन' रखा है।

विधि—पद्मासन लगाकर, शरीर को सीधा रखते हुए, दोनों हाथों को पीठ के पीछे ले-जावें। बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई पकड़ें। दोनों हाथों को खींचकर उस स्थान पर ले-जावें जहाँ रीढ़ और कमर का मिलान होता है। उसके पश्चात् 'रेचक' (श्वास बाहर निकालना)

करके, 'कुम्भक' (श्वास रोकना) को क़ायम रखते हुए, सिर को भूमि पर (शरीर सीधा रखते हुए) स्पर्श करावें। पुनः धीरे-धीरे सिर को उठाकर सीधे हो जावें और 'पूरक' (श्वास लेना) करें। यह आसन कुछ कठिन है, इसलिए प्रथम 'सिद्धासन' अथवा 'सुखासन' में भी किया जा सकता है; परन्तु पूर्ण लाभ पद्मासन लगाकर ही करने से होगा।

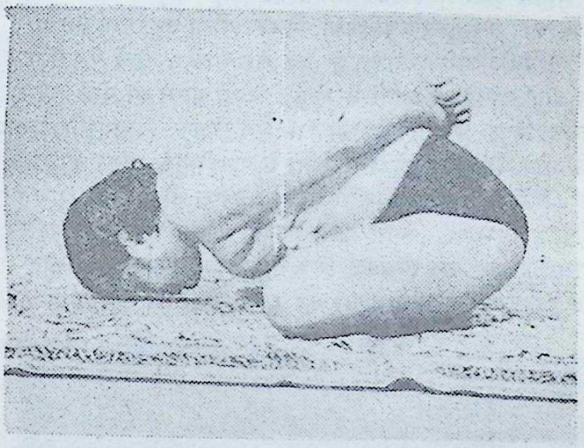

योगमुद्रासन (Yogamudrasana)

लाभ—इस आसन के अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर 'कुण्डलिनी' जाग्रत् हो जाती है। पेट की गैस की बीमारी दूर हो जाती है। पेट तथा अन्तड़ियों की सब शिकायतें दूर हो जाती हैं। तिल्ली, यकृत, फेफड़े ठीक अवस्था में रहते हैं। हृदय मजबूत बनता है। खून की खराबियाँ दूर हो जाती हैं। कुष्ठ तथा यौन विकार दूर हो जाते हैं। पेट का मोटापा दूर हो जाता है। शरीर मजबूत बनता है। मानसिक शक्ति (Will Power) बढ़ती है।

सगर्भा स्त्रियाँ इस आसन को न करें।

धनुरासन

इस आसन को करने से मनुष्य के शरीर का आकार खिंचे हुए धनुष जैसा हो जाता है, इसलिए इस आसन को 'धनुरासन' कहते हैं।

विधि—योगकारों ने धनुरासन की विधि का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है—

प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ, करौ च पृष्ठ धृतपादयुग्मम्।
कृत्वा धनुस्तुल्यविवर्तितांगं, निधाय योगी धनुरासनं तत्॥

सर्वप्रथम ज़मीन पर पेट के बल लेट जाएँ। दोनों पैर मिले हुए हों। दोनों टाँगों को घुटनों से मोड़ें। दोनों हाथों को पीछे की ओर बढ़ाकर गिट्टा (टखना) को पकड़ें। अब 'रेचक' (श्वास निकालना) करके धीरे-धीरे सिर को तथा हाथों से पकड़ी हुई टाँगों को खींचें। सिर को पीछे ले-जाने की कोशिश करें। दृष्टि भी पीछे की ओर होनी चाहिए। 'कुम्भक' (श्वास को रोकना) क़ायम रखते हुए, कठिनाई महसूस होने पर हाथ छोड़कर, सिर तथा टाँगों को सीधा ज़मीन पर रखते हुए 'पूरक' (श्वास लेना) करें।

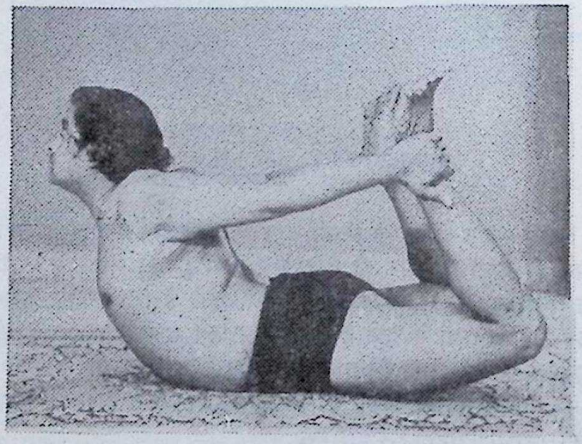

धनुरासन (Dhanurasana)

लाभ—इस आसन से पेट की चर्बी कम हो जाती है। पेट से गैस का नाश हो जाता है। पेट के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। कब्ज़ियत दूर हो जाती है। भूख खूब लगती है। छाती की जलन और हृदय की धड़कन दूर हो जाती है। हृदय मज़बूत बनता है। गले की तमाम बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। आवाज़ मधुर बनती है। श्वास की क्रिया सुन्दर बनती है। मुँह सुन्दर बनता है। आँखों की ज्योति बढ़ती है। आँखों के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। हाथ-पाँव में होनेवाला कम्पन दूर हो जाता है। शरीर सुन्दर बनता है। रेक्टी मसल्स (Recti-Muscles) में खिचाव होने से पेट को बहुत लाभ होता है। अन्तड़ियों पर खूब दबाव आने के कारण Intra-abdominal Pressure काफी बढ़ता है, जिसके कारण अन्तड़ियों में पाचनरस आने लगता है। इससे जठराग्नि तेज़ हो जाती है। इस आसन में 'भुजंगासन' तथा 'शलभासन' दोनों का समावेश होने के कारण इन दोनों आसनों के तमाम लाभ इससे मिलते हैं।

स्त्रियों के लिए यह आसन बहुत अच्छा है। इस आसन से मासिक धर्म के विकार एवं गर्भाशय के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। डिम्ब-ग्रन्थियों सम्बन्धी सब शिकायतें दूर हो जाती हैं। गर्भावस्था में स्त्रियाँ इस आसन को न करें।

पूर्वोत्तानासन

सोकर दोनों पैरों तथा हाथों को पीछे की तरफ ले-जाने के कारण इस आसन को 'पूर्वोत्तानासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर चित लेटकर दोनों पैर सीधे रखें। दोनों हाथ शरीर के साथ सटाकर रखें। अब 'रेचक' करके श्वास निकाल दें और टाँगों को धीरे-धीरे उठाकर आकाश की तरफ़ ले-जावें। इसके पश्चात् टाँगें सीधी रखते हुए पीछे सिर की तरफ ज़मीन से लगावें। अब दोनों हाथ भी पीछे ले-जाकर दोनों पैरों के दोनों अंगूठों को पकड़ें और ठोडी को छाती से लगाकर 'कुम्भक' क़ायम रखें। टाँगें नीचे उतारें, फिर 'पूरक' तथा 'रेचक' क्रमशः गहरा करें।

लाभ—इस आसन से अजीर्ण, कब्ज़ियत, अर्श, थाइराइड का कम

विकास, अंगविकार, अकाल वृद्धावस्था, दमा, कफ, खून की खराबी आदि दूर हो जाते हैं। यकृत (Liver) इस आसन से अच्छा बनता है।

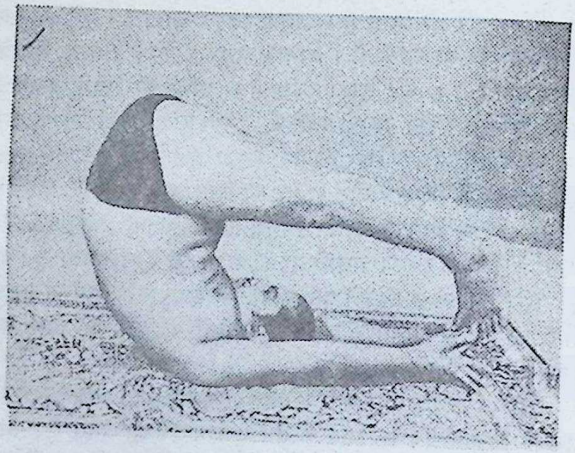

पूर्वोत्तानासन (Purvottanasana)

छाती (Thorax) का विकास होता है। श्वासक्रिया तेज़ होने से ऑक्सीजन (Oxigen) होकर खून शुद्ध बनता है। गले की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। पेट के तमाम दर्द (Flatulence) मिटते हैं। संधिवा (Rheumatism) मिटाता है। पेट की चर्बी (Fast) घटाता है। सिर (Head) के दर्द मिटाता है। वीर्य-विकार दूर होते हैं। बुरे विचारों का नाश होता है। नाड़ीतंत्र (Nervous System) स्वच्छ बनता है। शरीर तेजस्वी और शक्तिशाली बनता है। सब लोगों को यह आसन अवश्य करना चाहिए।

स्त्रियाँ साधारण स्थिति में यह आसन कर सकती हैं। गर्भावस्था में यह आसन नहीं करना चाहिए।

हृदयस्तंभासन

इस आसन का सम्बन्ध सीधा हृदय से होने के कारण इसे 'हृदय-

स्तम्भासन' कहते हैं।

विधि—मुलायम चादर पर चित लेटकर दोनों हाथों को सिर की तरफ़ लम्बा करें। हाथों और पैरों को एक फुट की दूरी पर रखकर 'रेचक' करके, वायु को पेट से निकालकर, 'कुम्भक' करके दोनों हाथों और पैरों को एक फुट ऊपर उठायें। दृष्टि हृदयस्थल पर रखें। फिर धीरे-धीरे हाथ-पैर नीचे रखकर 'पूरक' करके श्वास लें।

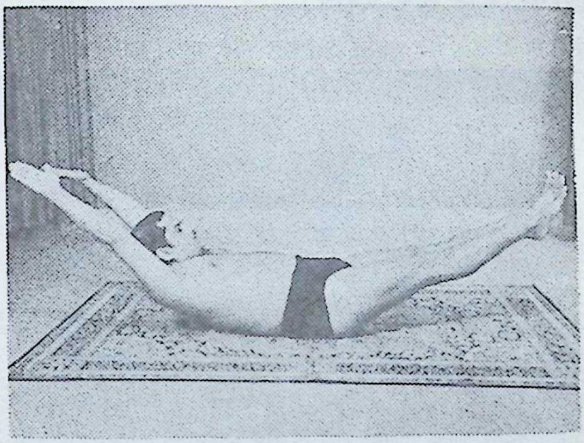

हृदयस्तंभासन (Hridayastambhasana)

लाभ—हृदय मज़बूत बनता है। छाती, गर्दन, पीठ के रोग दूर हो जाते हैं। नियमित करनेवाले का कभी अचानक हृदय-बन्द (Heart-fail) नहीं होता।

इस आसन को स्त्रियाँ गर्भावस्था के सिवाय बाकी समय में कर सकती हैं।

१६ नाभि-आसन

इस आसन में सारे शरीर का वज़न नाभि पर पड़ता है, जिसके

कारण इसका नाम 'नाभि-आसन' रखा गया है।

विधि—ज़मीन पर कोई नर्म वस्तु बिछाकर, उसपर पेट के बल सो जाएँ। कपाल, नासिका, छाती, नाभि, घुटने, पैर सीधे ज़मीन पर रखें। फिर दोनों हाथों को आगे की तरफ ले-जावें। शरीर को तानकर लम्बाने की कोशिश करें। 'पूरक' करके वायु को नाक द्वारा अन्दर लें। अब दोनो पाँवों तथा हाथों को दो फुट दूर रखकर ऊपर लगभग एक फुट उठावें। पश्चात् हाथों और पैरों को धीरे-धीरे नीचे रखते हुए 'रेचक' करके श्वास निकालें।

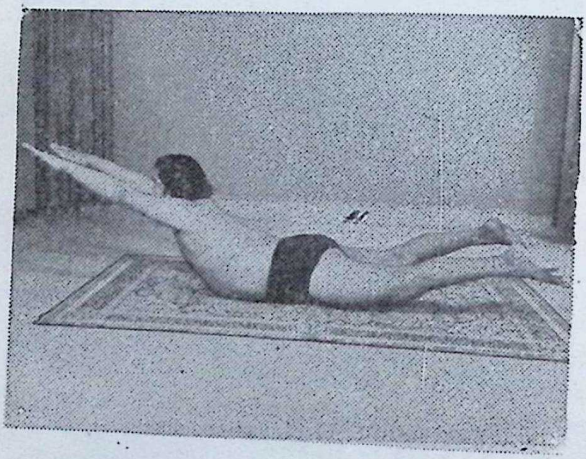

नाभि-आसन (Nabhi-Asana)

लाभ—पाचनशक्ति बढ़ती है। वायु-गैस की तकलीफ़ नष्ट हो जाती है। नाभि शक्तिशाली बनकर मस्तिष्क के रोगों में राहत मिलती है। वीर्यनाश के रोग दूर हो जाते हैं। पेट बढ़ना बन्द हो जाता है। छाती मज़बूत बनती है। शरीर की लम्बाई बढ़ती है।

स्त्रियाँ इस आसन को न करें।

स्थितऊर्ध्वपादविस्तृतासन

पैरों को ऊपर उठाकर हाथों से पकड़ते हुए, शरीर को स्थित रखने के कारण इस आसन को 'स्थितऊर्ध्वपादविस्तृतासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर बैठकर टाँगों को सीधा रखें। तब दोनों टाँगों को जितना फैला सकें, फैलावें। अब 'पूरक' करके श्वास लें और हाथों से दोनों पैरों के अंगूठों को पकड़कर, टाँगों को डेढ़ फुट भूमि से ऊपर उठाकर स्थित रखें और 'कुम्भक' क़ायम रखें। टाँगें और हाथ बिलकुल सीधे रहने चाहिएँ। थक जाने पर टाँगें भूमि पर रखकर 'रेचक' और उसके पश्चात् 'पूरक' क्रमशः करें।

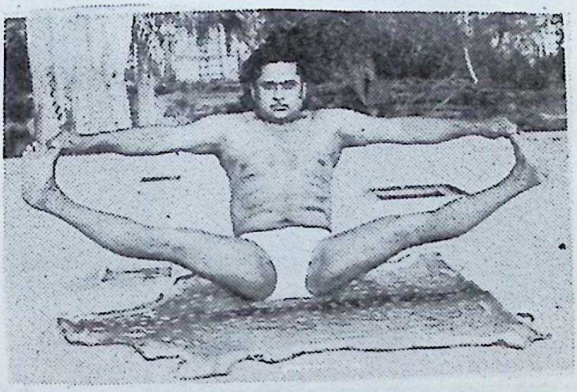

स्थितऊर्ध्वपादविस्तृतासन (Sthita-urdhvapadavistritasana)

लाभ—इस आसन से टाँगों तथा बाहों में शक्ति का संचार होता है। शरीर बलवान् और स्फूर्तिवाला बनता है। हाज़मा अच्छा बनता है। पीठ, नाभि, पेट स्वस्थ रहते हैं।

स्त्रियाँ इस आसन को कर सकती हैं।

हंसासन

इस आसन का आकार 'हंस' जैसा होने के कारण इस आसन को 'हंसासन' कहते हैं।

विधि—दोनों हाथों को ज़मीन पर रखकर, 'रेचक' करके (श्वास को निकालकर) शरीर को हल्का बनाकर, दोनों घुटनों को दोनों कोहनियों के ऊपर रखें। कोहनियाँ शरीर की तरफ़ रहें, इसका खयाल रखें। शरीर का सारा वज़न हाथों पर ही रहे और शरीर का आकार हंस जैसा बनावें। उसके बाद यह आसन अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर, धीरे-धीरे सिर को नीचे ले-जाकर नाक का भूमि से स्पर्श कराने का अभ्यास करावें। आसन छोड़ के 'पूरक' तथा 'रेचक' क्रमशः करें।

हंसासन (Hansasana)

लाभ—इस आसन से भुजाओं की मांसपेशियाँ मज़बूत बनती हैं। चेहरा तेजस्वी बनता है। शरीर में स्फूर्ति पैदा होती है। भोजन शीघ्र हज़म होता है। नाड़ीतंत्र (Nervous System) अच्छा बनता है।

योग में विशेष रुचि रखनेवाली स्त्रियाँ साधारण अवस्था में यह आसन कर सकती हैं।

पश्चिमोत्तानुशिरासन

जाँघ को सीधा रखकर सिर को उसके साथ स्पर्श कराने के कारण

इस आसन को 'जानुशिरासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर बैठकर, टाँगों को सीधा मिलाकर रखें। उसके पश्चात् किसी एक पैर को हाथ से लेकर, उसकी एड़ी को गुदा और अण्डकोष के मध्य-भाग 'सीवनी' में लगावें और तलवा साथवाली सीधी रखी हुई टाँग की जाँघ से लगाकर रखें। अब प्राणायाम की 'पूरक' क्रिया करके श्वास बाहर निकालें और पेट के नाभि-प्रदेश को अन्दर लेकर दोनों हाथों को सीधा रखें। पैरों को कैंची बनाकर पकड़ें

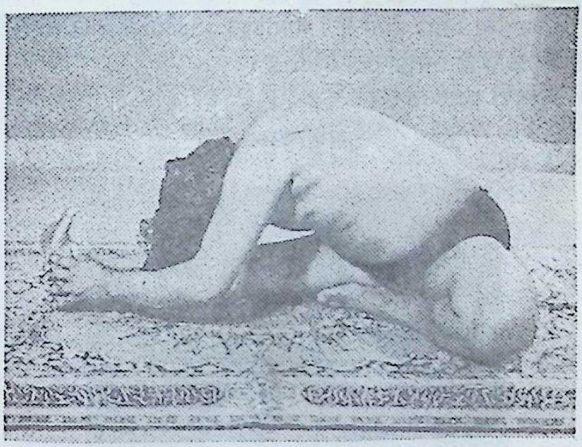

जानुशिरासन (Janushirasana)

और सिर को झुकाकर उस टाँग को स्पर्श करें। इस अवस्था में प्राणायाम की 'कुम्भक' स्थिति क़ायम रखें, अर्थात् श्वास न लें और न निकालें। थक जाने पर धीरे-धीरे सिर को ऊपर उठाकर सीधे बैठ जाने पर 'पूरक' और 'रेचक' करें। क्रमशः पैर बदलें। इस आसन को करते समय गुदा और मूत्रेन्द्रिय को ऊपर खींचने से असाधारण लाभ होता है।

इस प्रकार दोनों टाँगें सीधी करके, सिर को स्पर्श कराने से 'पश्चिमोत्तान-आसन' हो जाता है।

लाभ—इस आसन से तिल्ली एवं जिगर की खराबियाँ दूर होती हैं। खाँसी, दमा, साधारण ज्वर और तपेदिक के रोग दूर होते हैं। आयु बढ़ती है। पेट की सब खराबियाँ दूर होती हैं। पाचनशक्ति तेज़ होती है। गठिया की बीमारी नहीं होती। हैमस्ट्रिंग मसल्स (Hamstring Muscles) मज़बूत बनते हैं। रक्त का संचार तीव्र बनने से खून की खराबी तथा चमड़ी के रोग नहीं होते। नाड़ी-तंत्र (Nervous System) सुन्दर बनता है। पेट की चर्बी कम हो जाती है। वात और कफ का नाश होता है। सायटिका (Sciatica) की बीमारी में फ़ायदा होता है। वीर्य-रक्षा होती है।

स्त्रियाँ इस आसन को न करें।

संकोचासन

संकोचासन (Sankochasana)

इस आसन से सारे शरीर का संकोच होता है, इसलिए इस आसन को 'संकोचासन' कहा जाता है।

विधि—भूमि पर चित सोकर, दोनों टाँगों को सीधा रखते हुए आकाश की ओर उठावें। उसके पश्चात् दोनों हाथों से कमर को पकड़ें और टाँगें मोड़कर 'पद्मासन' लगावें। 'पद्मासन' लग जाने के बाद 'रेचक' करके किसी एक टाँग के घुटने को नाक से स्पर्श करावें। उसके बाद दूसरी टाँग के घुटने को नाक से लगावें। कठिनाई महसूस होने पर पद्मासन छोड़कर, टाँगों को धीरे-धीरे भूमि पर रखकर 'पूरक' क्रमशः गहराई से करें।

लाभ—इस आसन से सारे शरीर का व्यायाम होता है। शरीर नीरोग बनता है। श्वासक्रिया सहज बनकर आयु की वृद्धि होती है। बुढ़ापा जल्दी नहीं आता। गठिया-वायु आदि के रोग नहीं होते। वात, पित्त और कफ़ का शमन होता है। गले की बीमारियाँ नहीं होतीं। पेट की चर्बी (Fats) कम हो जाती है। छाती (Thorax) का विकास होता है। बाल जल्दी सफ़ेद नहीं होते। दाँत मज़बूत बनते हैं। पेट, छाती और कमर के रोग कभी नहीं होते। वीर्य परिपक्व बनकर ऊर्ध्वगति हो जाता है, जिससे स्वप्नदोष तथा प्रमेह जैसे रोग नहीं होते और शरीर बलिष्ठ बनता है।

स्त्रियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

यानासन

इस आसन का आकार वायुयान जैसा होने के कारण इसको 'यानासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर पेट के बल सीधे लेट जावें। दोनों पाँव मिलाकर रखें। हाथों को दोनों तरफ़ तानकर रखें। उसके पश्चात् श्वास भरकर सिर, छाती, टाँगें, हाथ, भूमि से उठा लें; श्वास की घबराहट से पूर्व छाती, सिर, हाथ व टाँगें भूमि पर रखकर श्वास निकाल दें और गर्दन मोड़कर भूमि पर रखकर शरीर को ढीला कर दें।

लाभ—शरीर हल्का और स्फूर्तिवान् बनता है। पेट के विकार नष्ट होते हैं। गले और छाती की परेशानियाँ दूर हो जाती हैं। नाभि

तथा योनि-सम्बन्धी विकार ठीक होते हैं। पाचन-क्रिया तीव्र होती है।

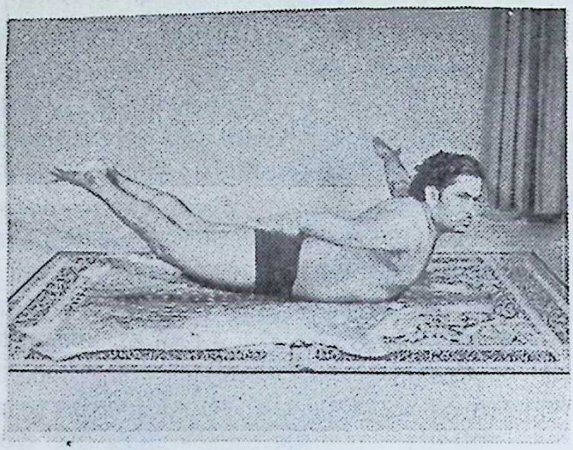

यानासन (Yanasana)

स्त्रियाँ गर्भावस्था में यह आसन न करें। सामान्य अवस्था में यह आसन उनकी अनेक बीमारियों को ठीक करता है।

ऊर्ध्वपादतलसंयुक्तासन

शीर्षासन करके दोनों टाँगों को घुटनों से मोड़कर दोनों पाँवों के तलवों को मिला देने से इस आसन को 'ऊर्ध्वपादतलसंयुक्तासन' कहते हैं।

विधि—शीर्षासन करके श्वास भरकर दोनों टाँगों को मोड़कर दोनों पाँवों के तलवों को मिला दें। श्वास थोड़ी देर रोककर घबराहट से पूर्व टाँगें सीधी करके निकाल दें। सरलता से जितनी बार कर सकें, करें। उसके पश्चात् धीरे-धीरे शीर्षासन में बताए अनुसार मूल-अवस्था में आ जावें।

लाभ—स्मरणशक्ति बढ़ती है। आँखों की ज्योति तीव्र होती है।

पाचनक्रिया तेज़ होती है। दाँत मज़बूत बनते हैं। शरीर सुन्दर और शक्तिशाली बनता है। शीर्षासन से होनेवाले सब लाभ इस आसन में प्राप्त होते हैं।

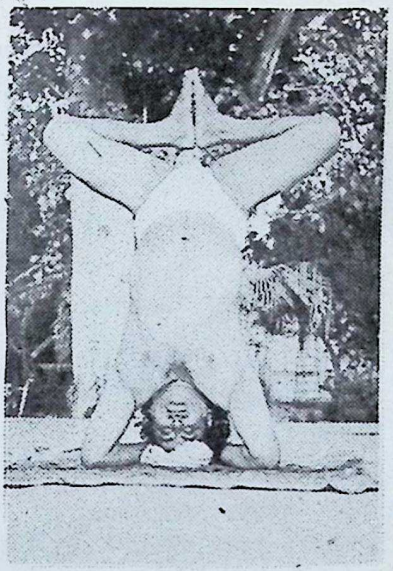

ऊर्ध्वपादतलसंयुक्तासन (Urdhwa-Padtal-Asana)

स्त्रियाँ किसी जानकार व्यक्ति के सामने इस क्रिया को सीखकर, सामान्य अवस्था में यह आसन कर सकती हैं।

मृगासन

विधि—सर्वप्रथम टाँगों को भूमि पर मोड़कर वज्रासन की अवस्था में बैठ जावें। उसके पश्चात् पेट और छाती को जानुओं पर जमाकर रखें। दोनों हाथों को पीछे ले-जावें और ऊपर तानकर सीधे उठावें। दृष्टि सीधी रखें। श्वास भरकर नितम्बों को कुछ उठा लें; इतना उठावें कि सारे शरीर का बोझ घुटनों पर पड़े। श्वास में

कठिनाई हो, उससे पूर्व नितम्बों को टाँगों पर रख दें। हाथों को आगे लेकर सीधे हो जायें और श्वास निकालकर सामान्य अवस्था में आ जावें।

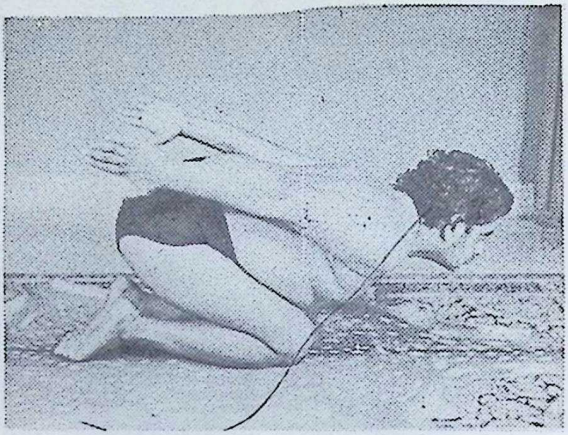

मृगासन (Mrigasana)

लाभ—डायबिटीज़ में लाभ पहुँचता है। पेट में से गैस निकलती है। चर्बी घटती है। पाचन-क्रिया अच्छी बनती है। गठिया की बीमारी ठीक होती है। टाँगों, बाहों और गले को लाभ पहुँचता है।

सामान्य अवस्था में स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं।

ध्रुवासन

भक्त ध्रुव ने इसी आसन में तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी, इसलिए इस आसन का नाम पड़ा 'ध्रुवासन'।

विधि—भूमि पर सीधे खड़े हो जाएँ। अब दाईं टाँग को घुटने से मोड़कर उसके पैर को बाईं टाँग के मूल स्थान में लगावें। उसके बाद श्वास भर लें। अब श्वासों को रोककर, दोनों हाथ जोड़कर हृदय-स्थान पर रखें। दृष्टि को सामने रखकर अथवा आँखों को

सामान्य स्थिति में मूंदकर रखें। श्वास को जितना सरलता से रोक सकें, रोकें। पश्चात् हाथ छोड़कर, टाँग नीचे रखकर, श्वास निकाल दें। पुनः दूसरी टाँग की विधि क्रमशः करें।

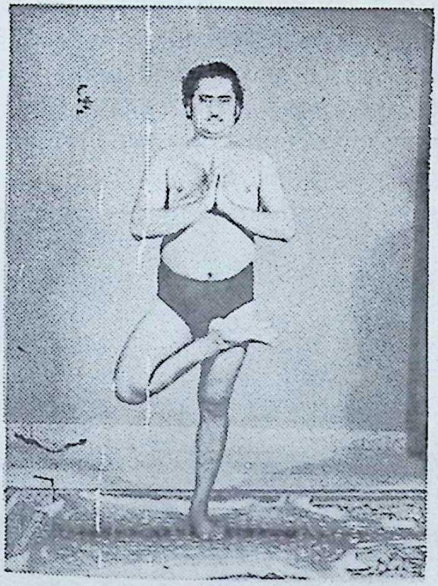

ध्रुवासन (Dhruvasana)

लाभ—अनेक योगियों ने इस आसन की अवस्था में तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है इस आसन से मन की मलिनता और चंचलता दूर होकर शान्ति और स्फूर्ति मिलती है। प्रभु का स्मरण करने में सरलता से सफलता मिलती है। टाँगें मज़बूत बनती हैं। घुटनों में होनेवाले वायु-विकार की समाप्ति हो जाती है। कठिन-से-कठिन कार्य करने में भी परेशानी महसूस नहीं होती। नदी के किनारे यह आसन लगाने से अपूर्व आनन्द मिलता है।

स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं।

खगासन

विधि—पद्मासन लगाकर पेट के बल सो जाएँ। दोनों हाथों को दोनों ओर शरीर के साथ लगाकर रखें। उसके पश्चात् श्वास भरकर सिर, गले, छाती को ज़मीन से उठावें और ऊपर की तरफ ले-जाने की पूरी कोशिश करें। दृष्टि आकाश की ओर रखें। श्वास को जब तक रोक सकें, रोकें। बाद में धीरे-धीरे सर्वप्रथम छाती, फिर सिर ज़मीन पर रखकर हाथों को सीधा कर लें। श्वास निकालकर शरीर को शिथिल कर दें।

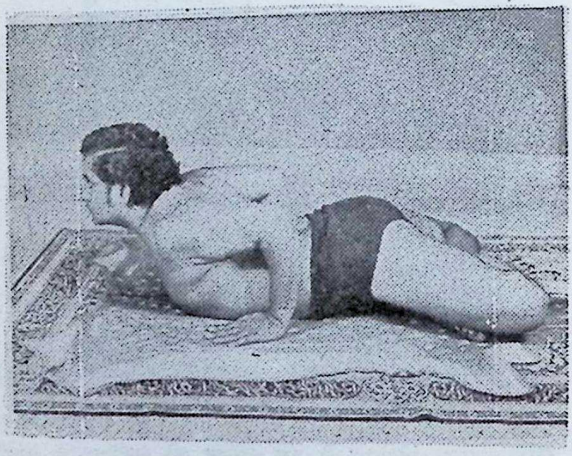

खगासन (Khagasana)

लाभ—इस आसन के करने से सिर, गले, छाती, पेट आदि के तमाम रोग नष्ट हो जाते हैं। नाभि-विकार दूर हो जाता है। पेट की गैस निकल जाती है। मूत्र-सम्बन्धी कष्टों का शमन हो जाता है। मधुमेह ठीक हो जाता है। श्वास और दमे की बीमारी में लाभ होता है। दृष्टि अच्छी बनती है। सिर में आनेवाले चक्कर बन्द हो जाते हैं। पेट हल्का हो जाता है और छाती चौड़ी बनती है।

कोणासन

शरीर की अवस्था कोण जैसी बनने के कारण इस आसन को 'कोणासन' कहते हैं ।

विधि—सर्वप्रथम सीधे खड़े हो जावें । दाएँ पैर को सरलता से आगे ले-जाएँ । श्वास भरकर दाएँ घुटने को मोड़ें । अब बाएँ हाथ से दाएँ पैर को पकड़ लें । उसके पश्चात् दाएँ हाथ को कान और दृष्टि के लेवल में रखकर आगे सीधा रखें । दृष्टि हाथ की तरफ़ सीधी रखें । श्वास में खिचाव पैदा हो, उससे पूर्व शरीर को मूल स्थिति में ले-जावें । श्वास निकाल दें । पुनः बाएँ पैर से दूसरी क्रिया करें ।

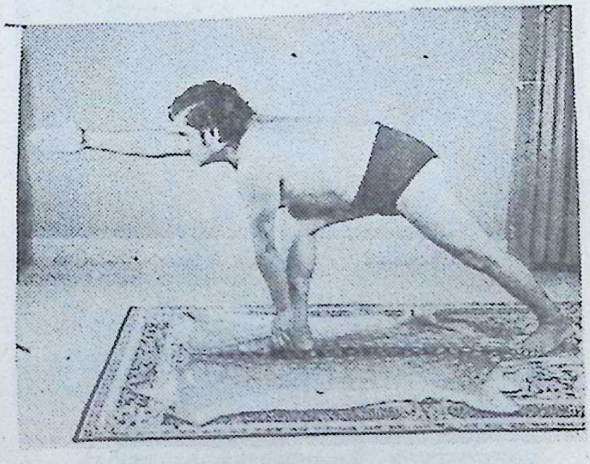

कोणासन (Konasana)

लाभ—टाँगें और हाथ मजबूत बनते हैं । दूरदृष्टि अच्छी बनती है । मांसपेशियाँ शक्तिशाली और सुन्दर होती हैं । तीव्रगति से यह क्रिया करने से पेट की वायु नष्ट होती है । पाचनक्रिया अच्छी बनती है । पेट हल्का हो जाता है । सन्धि-स्थान निर्विकार हो जाते हैं ।

स्त्रियाँ सामान्य अवस्था में यह आसन कर सकती हैं।

धनुषाकर्षणासन

धनुषबाण को जैसे तानकर रखते हैं, ठीक उसी प्रकार शरीर की अवस्था को बना लेने से आसन को 'धनुषाकर्षणासन' कहते हैं।

विधि—जमीन पर बैठकर, दोनों टाँगों को सामने सीधा रखें। उसके पश्चात् बाएँ हाथ से दाएँ पैर के अँगूठे को पकड़ लें। अब बाएँ पैर को दाएँ घुटने पर रखकर, दाएँ हाथ से बाएँ पैर का अँगूठा पकड़कर, दाएँ कान की तरफ़ खींचें। यह क्रिया क्रमशः हाथ और पाँव बदलकर करें। मोटे शरीरवालों को श्वास भरकर करना चाहिए।

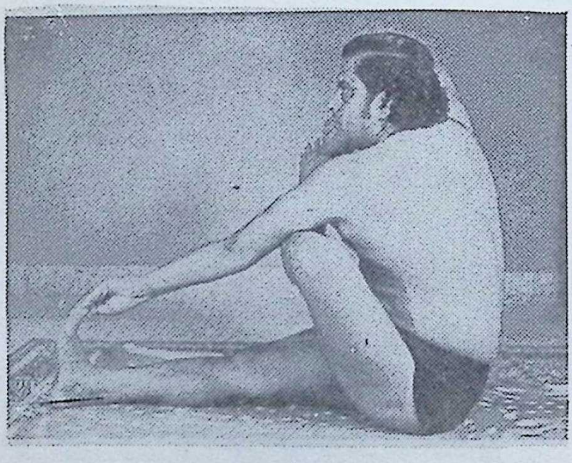

धनुषाकर्षणासन (Dhanushakarshanasana)

लाभ—इस आसन के करने से टाँगों और बाहों में शक्ति प्राप्त होती है। गठिया जैसा रोग, सरसों के तेल की मालिश करके करने से, दूर हो जाता है। पेट तथा उदर की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं।

स्त्रियाँ गर्भावस्था में अथवा मासिक धर्म की अवस्था में यह आसन न करें।

१९ पर्वतासन

इस आसन के करने से शरीर की स्थिति पर्वत-जैसी बन जाती है। हाथों की अँगुलियाँ पर्वत की चोटी-जैसी लगती हैं, इसलिए इसको 'पर्वतासन' कहते हैं।

विधि—सर्वप्रथम ज़मीन पर बैठकर पद्मासन लगावें। उसके पश्चात् श्वास भरकर, गुदा का संकोच करके, दोनों हाथों को आकाश की तरफ़ तानकर रखें। सामान्य अवस्था में जितना समय सरलता से श्वास रोक सकें, रोकें। उसके बाद श्वास धीरे-धीरे निकालकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर ले-आवें। फिर शरीर की स्थिति सामान्य अवस्था में ले-आवें। पद्मासन की अवस्था में क्रमशः दोनों टाँगों को बदलते रहें।

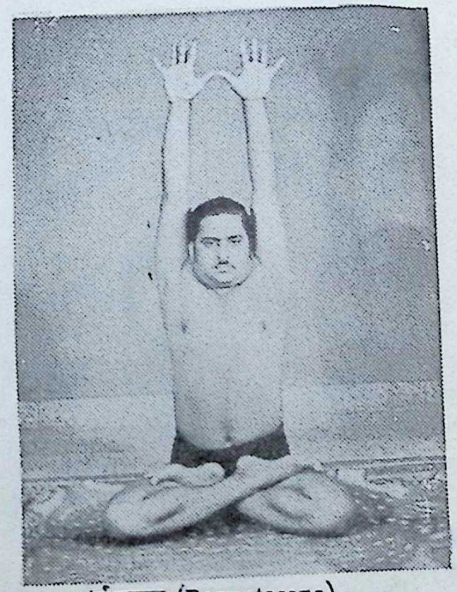

पर्वतासन (Parwatasana)

लाभ—इस आसन से ढीलापन दूर होकर शरीर वलिष्ठ होता है। छाती का विकास होता है। हृदय बलवान् बनता है। रक्त की शुद्धि होती है। फेफड़ों में पैदा हुए विकार दूर हो जाते हैं। श्वास और दमा के कष्ट में आराम मिलता है। स्त्री-पुरुष दोनों यह आसन कर सकते हैं।

पादतलसंयुक्तमूर्द्धास्पर्शासन

दोनों पाँवों के तलवों को मिलाकर मूर्द्धास्थान को लगाने से इस आसन को 'पादतलसंयुक्तमूर्द्धास्पर्शासन' कहते हैं।

विधि—ज़मीन पर सीधे बैठ जावें। दोनों टाँगों को सामने सीधा सटाकर रखें। उसके पश्चात् दोनों हाथों से दोनों पाँवों के

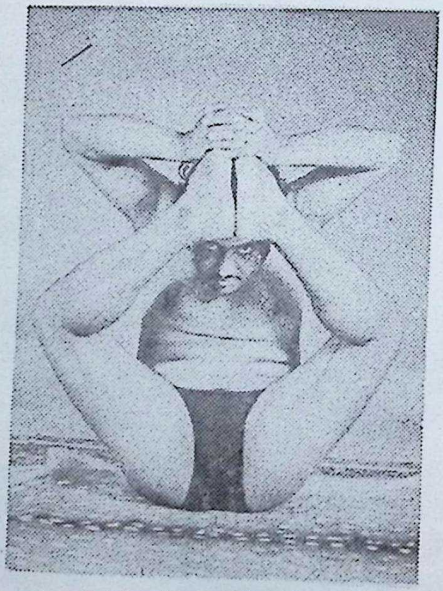

पादतलसंयुक्तमूर्द्धास्पर्शासन
(Padtalsanyuktamurdhasparshasana)

अंगुलियोंवाले भाग की पकड़ें। श्वास निकालकर दोनों पाँवों के तलवों को मिलाते हुए सिर के अग्रभाग को स्पर्श करें। दृष्टि, दोनों पाँवों के एड़ी के भाग के नीचे से सामने रखें। श्वास न लें और न निकालें। धीरे-धीरे पाँव नीचे रखकर टाँगें सीधी करके श्वास गहराई से लें और निकालें।

लाभ—इस आसन के करने से पेट की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। खाना हज़म हो जाता है। पेट साफ़ रहता है। वायु-विकार दूर हो जाता है। गैस की बीमारी नहीं रहती। श्वास की क्रिया अच्छी बनती है। गठिया की बीमारी दूर हो जाती है। टाँगें शक्तिशाली बनती हैं। गर्दन में होनेवाला सभी तरह का कष्ट दूर हो जाता है। पेट की चर्बी (Fats) कम हो जाती है। पेट का भारीपन दूर होकर हल्का हो जाता है। प्रातः कुछ पानी पीकर ५-१० बार यह आसन करने से पेट साफ होता है।

जिन स्त्रियों को मासिक साफ न आता हो, उनके लिए यह आसन 'रामबाण' है। मासिक अति आते रहने पर इसे न करें। सगर्भा स्त्रियों के लिए यह आसन वर्जित है।

२०- तुलासन

पद्मासन लगाकर दोनों हाथों के सहारे शरीर को ऊपर उठाने से इसे 'तुलासन' कहते हैं।

विधि—पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को घुटनों पर न रखकर, जंघाओं के पास भूमि पर रखें। 'पूरक' करके (श्वास लेकर) शरीर ऊपर उठावें। जितना अधिक उठा सकें, उतना लाभ होगा। बाहें सीधी रखें। 'कुम्भक' (श्वास रोकना) की स्थिति रखें। पुनः धीरे-धीरे शरीर को भूमि पर रखकर 'रेचक' (श्वास बाहर निकालना) करें।

लाभ—इस आसन में 'पद्मासन' से होनेवाले लाभों के अतिरिक्त हाथ के पंजे मज़बूत बनते हैं। बाहें शक्तिशाली बनती हैं। कन्धे और पीठ बलिष्ठ बनती है। वीर्यपात की बीमारी दूर हो जाती है।

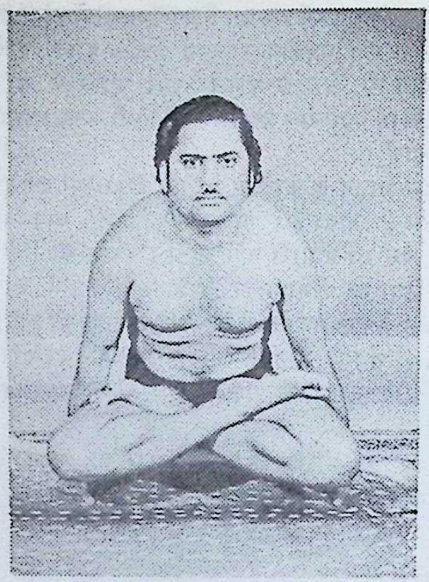

तुलासन (Tulasana)

हाज़मा तेज़ बनता है। साधारण स्थिति में स्त्रियाँ भी यह आसन कर सकती हैं।

एकपादांगुष्ठासन

एक पैर के पंजे के आधार पर शरीर का वज़न रखने के कारण इस आसन को 'एकापादांगुष्ठासन' कहते हैं।

विधि—शरीर को सीधा रखते हुए बैठने की कोशिश करें। बैठते समय दोनों पैरों की एड़ियों को ऊपर उठावें। सारे शरीर का वज़न पैर के पंजों पर रखें। तत्पश्चात् किसी एक पैर को नीचे से उठाकर दूसरे पैर की जंघा (घुटने के ऊपर) पर रखें, और जिस एक पैर के आधार पर आप बैठे हैं उस पैर की एड़ी को गुदा और अण्ड-कोश के मध्य-भाग (सीवनी) में लगावें। अब दायाँ हाथ दाईं जंघा

पर और बायाँ हाथ बाईं जंघा पर रखकर 'ज्ञानमुद्रा' की स्थिति में रहें। क्रमशः पैर बदलते रहें। यह ध्यान रखें कि आसन करने से पूर्व

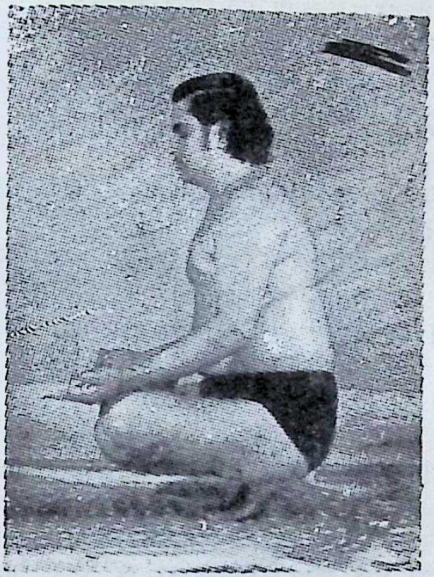

एकपादांगुष्ठासन (Ekpadangushthasana)

प्राणायाम की 'पूरक' क्रिया करके श्वास लें। स्थिर रहने पर 'कुम्भक' तथा छोड़ने पर 'रेचक' करके श्वास बाहर निकालें। शुरू में कठिनाई महसूस होने पर किसी का सहारा लेकर यह आसन किया जा सकता है। धीरे-धीरे सहारा छोड़ दें।

लाभ—इस आसन से वीर्य-नाड़ी पर दबाव पड़ने से वीर्यनाश होनेवाली बीमारियाँ (स्वप्नदोष, प्रमेह आदि) दूर हो जाती हैं। ब्रह्मचर्य-रक्षा में मदद मिलती है। गठिया रोग दूर होता है। वात (बादी), रक्त तथा दोनों प्रकार के अर्श (बवासीर) को नष्ट करता है। इसका नियमित अभ्यास करनेवाले को बुढ़ापे में भी चश्मा लगाने

की आवश्यकता नहीं रहती। विकारी विचारों का नाश होता है। स्मरणशक्ति बढ़ती है।

स्त्रियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

२१ वज्रासन

इस आसन में दोनों टाँगों को वज्राकार बनाने के कारण इस आसन को 'वज्रासन' कहा जाता है। इस आसन को 'वीरासन' भी कहते हैं।

विधि—'घेरंड संहिता' में वज्रासन की विधि का निम्न शब्दों में उल्लेख आया है—

> जंघाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदापार्श्वे पदावुभौ।
> वज्रासनं भवेदेतत् योगीनां सिद्धिदायकम्॥

सर्वप्रथम दोनों टाँगों को आगे की तरफ सीधी लम्बावें। उसके पश्चात् दोनों में से एक टाँग को घुटने से मोड़कर दूसरी टाँग के साथ सटी हुई रखें। बाद में उस तरफ के हाथ से उस टाँग के घुटने को पकड़कर रखें और टाँग ऊपर करके उसके पाँव में उस पाँव की एड़ी रखें। पाँव का अंगूठा खींचा हुआ रखें। इससे घुटना ज़मीन से लगा रहेगा। ठीक इसी प्रकार की स्थिति में दूसरी टाँग को बनावें और एड़ियों पर बैठ जावें। दोनों एड़ियाँ मिली हुई हों। नितम्ब पैर के तलुओं पर और जाँघें पिंडलियों पर रहें, इसका ध्यान रखें। रीढ़ और सिर सीधे और तने रखें। दोनों हाथों की कोहनियों को बिना मोड़े हथेलियों को ज़मीन की ओर करके, घुटनों पर रखें। दृष्टि स्थिर सामने रखें। जिनकी हड्डियाँ लचीली न हों, वे ज़मीन पर हाथ रखकर अभ्यास करें; परन्तु इससे लाभ कम होगा। जितना हो सके, ज़मीन का सहारा छोड़ देना चाहिए।

इस आसन का दूसरा प्रकार यह है कि पाँवों को तिरछा करके उनके तलुओं पर बैठ जावें। श्वास की क्रिया सामान्य रखें।

वज्रासन लगाकर पीछे ज़मीन पर लेटने से 'सुप्तवज्रासन' हो जाता है।

लाभ—इस आसन के करने से शरीर का मध्य-भाग सीधा रहता

है और श्वास की गति-क्रिया मंद होने से आयु बढ़ती है। दृष्टि की स्थिर स्थिति से आँखों की ज्योति बढ़ती है। 'वज्र नाड़ी' जिसको 'वीर्यधारा' नाड़ी' कहा जाता है, इस आसन के करने से मज़बूत बनती है, जिससे वीर्य की गति ऊर्ध्व होने से शरीर वज्र-जैसा बनता है। यह आसन काफी समय तक सरलता से किया जा सकता है, जिससे मन की चंचलता दूर होकर मनुष्य बुद्धिवाला बनता है। रक्त-संचार ठीक ढंग से होने के कारण शरीर नीरोग और सुन्दर बनता है।

वज्रासन (Vajrasana)

भोजन के आधे घण्टे के पश्चात् इस आसन को करने से पेट की वायु का नाश हो जाता है। पाचनशक्ति तेज़ होती है। क़ब्ज़ियत दूर होकर पेट के तमाम रोग दूर हो जाते हैं। पांडु रोग ठीक हो जाता है। रीढ़, कमर, जांघ, घुटनों और पैरों में शक्ति बढ़ती है। कमर

और पैरों का वात-रोग या 'सायटिका' दूर होता है। ध्यान लगाने के लिए यह आसन अत्युत्तम है। योगियों के सिद्धिदायक इस आसन को सरलता से करके अपनी स्मरणशक्ति बढ़ाई जा सकती है। स्त्री-पुरुष दोनों इस आसन को कर सकते हैं।

स्त्रियों के अनियमित मासिक धर्म आदि रोगों में यह आसन बहुत लाभ पहुँचाता है।

२२ उष्ट्रासन

विधि—इस आसन में दोनों पैरों को तथा टाँगों को घुटनों तक

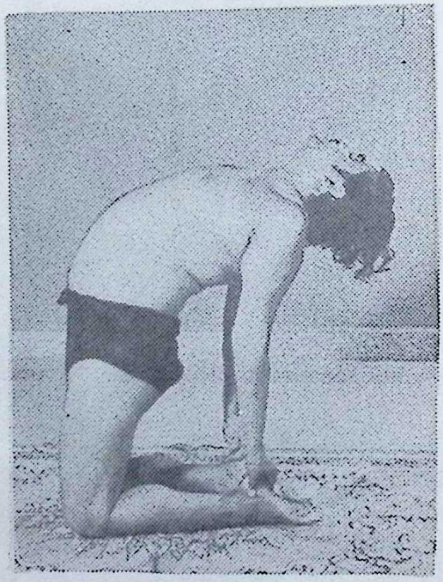

उष्ट्रासन (Ushtrasana)

मोड़कर भूमि पर रखें। नितम्ब पैरों की एड़ियों पर 'वज्रासन' के समान रख दें। तब 'पूरक' करके श्वास लें; फिर टाँगें घुटनों तक

भूमि पर रखते हुए शरीर को ऊपर उठावें। शरीर को कमर से मोड़-कर, सिर को पीछे की तरफ ले-जावें और दोनों हाथों को, दोनों पैरों की एड़ियों पर रखते हुए, पेट को जितना बाहर निकाल सकें उतना निकालें। दोनों हाथ सीधे रखें। दृष्टि भूमि पर लगाने की कोशिश करें। आसन छोड़ते समय 'रेचक' करें।

लाभ—इस आसन से 'वज्रासन' में होनेवाले सब लाभ होते हैं। उसके अलावा पेट में होनेवाली गैस दूर हो जाती है। पीठ तथा पैरों में होनेवाले वात-रोग का नाश होता है। कद बढ़ता है। गठिया की बीमारी नहीं होती। पाचनशक्ति बढ़ती है। आँखों के विकार जैसे कि पानी आना, खुजली-धुंध आना आदि दूर होते हैं। पांडुरोग ठीक होता है। शरीर सशक्त बनता है। पेट की चर्बी कम होती है। जिगर तथा तिल्ली यदि बढ़ गई हो तो ठीक हो जाती है।

स्त्रियों के लिए यह आसन बहुत अच्छा है। उन्हें यह आसन नियमित करना चाहिए।

एकपादजानुनासिकास्पर्शासन

एकपादजानुनासिकास्पर्शासन (Ekpadjanunasikasparshasana)

एक पाँव के साथ नासिका को घुटने से स्पर्श कराने के कारण इस आसन को 'एकपादजानुनासिकास्पर्शासन' कहते हैं।

विधि—सीधे खड़े होकर, किसी एक टाँग के घुटने को मोड़कर भूमि पर लगावें। दूसरी टाँग के घुटने को मोड़कर त्रिकोण की स्थिति में लगावें। अब 'रेचक' द्वारा श्वास बाहर निकालकर, झुककर नाक को उस टाँग के घुटने से स्पर्श करावें। दोनों हाथों को घुटने के दोनों ओर लगावें। सीधा होने पर 'पूरक' तथा 'रेचक' क्रमशः गहराई से करें, तब तक 'कुम्भक' कायम रखें। क्रमशः पैरों को बदलते रहें, और गति को तेज़ करते जाएँ। ऐसा करने से लाभ अधिक होगा।

लाभ—इस आसन से शरीर की (खासकर पेट की) चर्बी कम हो जाती है। हाज़मा ठीक रहता है। श्वास-क्रिया अच्छी बनती है। टाँगें मज़बूत हो जाती हैं। प्राणायाम अच्छा होता है। कमर लचकीली बनती है। शरीर सुन्दर और नीरोग रहता है। शारीरिक श्रम कम करनेवाले लोगों को यह आसन नित्य करना चाहिए। इससे आयु की वृद्धि होती है।

साधारण अवस्था में स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं।

२६ शयनद्विपादनासाग्रस्पर्शासन

लेटकर दोनों पैरों को मिलाकर नाक से स्पर्श कराने के कारण इस आसन को 'शयनद्विपादनासाग्रस्पर्शासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर पीठ के बल लेटकर, दोनों पैरों को पेट की ओर लाकर, दोनों पैरो के तलवे मिला लें। उसके पश्चात् 'पूरक' करके श्वास लें और दोनों हाथों को मिलाकर, दोनों पैरों को पकड़ते हुए नाक से स्पर्श करावें; उस समय सिर को भूमि पर से ऊपर उठावें। दोनों हाथों को नमस्कार की स्थिति में रखें। दृष्टि आकाश की तरफ रखें। सिर तथा पैरों को भूमि पर रखकर ही 'रेचक' करें; तब तक 'कुम्भक' की स्थिति में रहें।

लाभ—इस आसन से पीठ मज़बूत, कमर पतली और पेट हल्का बनता है। बढ़ा हुआ पेट कम हो जाता है। पाचनशक्ति अच्छी हो जाती है। हृदय बलवान् बनता है। शरीर स्वस्थ और हल्का रहता

शयनद्विपादनासाग्रस्पर्शासन

(Shayan-Dwipad-nasagra-sparsha-asana)

है। विचार शुद्ध बनते हैं और बुद्धि प्रखर हो जाती है।

गर्भावस्था में स्त्रियाँ इस आसन को न करें।

मस्तकपादांगुष्ठासन

सिर तथा पैरों के आधार पर शरीर को स्थिर रखने के कारण इस आसन को 'मस्तकपादांगुष्ठासन' कहते हैं। इस आसन को 'द्विकोणासन' भी कहते हैं।

विधि—सर्वप्रथम पेट के बल सीधे भूमि पर लेट जाएँ। सिर के नीचे कोई नर्म साधन (कपड़ा आदि) रखकर, हाथों के सहारे शरीर को ऊपर उठाकर पैरों को एक फुट सिर की तरफ ले आवें। अब हाथों को जाँघों पर दोनों तरफ सीधे रखें। आसन करते समय प्राणायाम की 'पूरक' क्रिया करें। स्थिर रहने पर 'कुम्भक' कायम रखें। आसन छोड़ने पर 'रेचक' तथा 'पूरक' क्रमशः गहराई से करें।

लाभ—इस आसन से शरीर स्थिर बनता है। मस्तिष्क, गला,

छाती, पेट, टाँगें तथा पैरों में शक्ति का संचार होता है और ये अंग बलवान् बनते हैं। कण्ठ-नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।

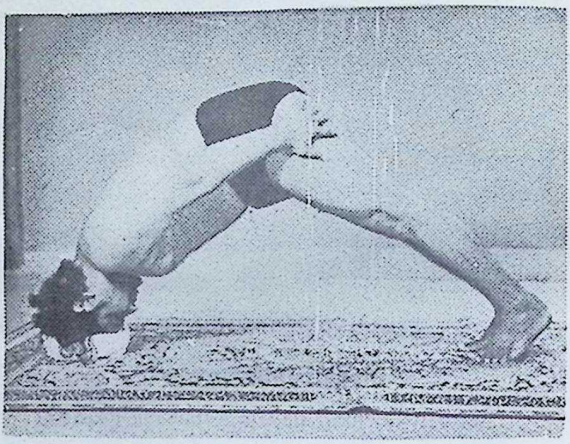

मस्तकपादांगुष्ठासन (Mastakpadangushthasana)

स्त्रियों के मासिक धर्म आदि रोगों के लिए यह आसन बहुत ही लाभदायक है। स्त्रियाँ इस आसन को अवश्य किया करें।

२४ पादांगुष्ठनासिकास्पर्शासन

हाथ-पाँव मिलाकर नासिका से स्पर्श कराने के लिए इस आसन को 'पादांगुष्ठनासिकास्पर्शासन' कहते हैं।

विधि—सर्वप्रथम भूमि पर सीधे बैठकर, दोनों पैरों के तलवे मिलावें। अब दोनों हाथों की कैंची बनाकर, दोनों पैरों को पकड़ें। प्राणायाम की 'रेचक' क्रिया करके (श्वास बाहर निकालकर) दोनों पैरों को ऊपर उठाकर, नाक से स्पर्श करावें। दृष्टि भूमि पर सीधी रखें। 'कुम्भक' की स्थिति में रहते हुए, आसन को छोड़कर, 'पूरक' तथा 'रेचक' गहराई से करें।

लाभ—इस आसन से घुटनों में होनेवाली गठिया बीमारी दूर हो जाती है। मज्जा की गाँठें शुद्ध हो जाती हैं। पेट साफ रहता है।

पादांगुष्ठनासिकास्पर्शासन

(Padangushthanasikasparshasana)

टाँगें मज़बूत बनती हैं। कमर तथा पीठ के दर्द दूर होते हैं।

स्त्रियाँ साधारण अवस्था में यह आसन कर सकती हैं।

चन्द्रनमस्कारासन

यह आसन करने से शरीर का आकार चन्द्रमा-जैसा बन जाता है, इसलिए इसको 'चन्द्रनमस्कारासन' कहते हैं।

विधि—दोनों पाँव मिलाकर श्वास भरकर, दोनों हाथों के अंगूठों को स्पर्श करते हुए, आकाश की तरफ ले-जावें। अब धीरे-धीरे कमर को मोड़ते हुए, सिर और हाथों को पीछे की ओर ले-जावें। नज़र पीछे की तरफ; जितना हो सके नीचे देखने का प्रयास करें। श्वासों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, घबराहट होने से पूर्व सावधानी से

शरीर को सीधा करके हाथों को नीचे ले-आवें। श्वास निकालकर शरीर को सामान्य अवस्था में लावें। इस क्रिया को करने के पश्चात् सिर को आगे की तरफ नीचे अवश्य झुकाया करें।

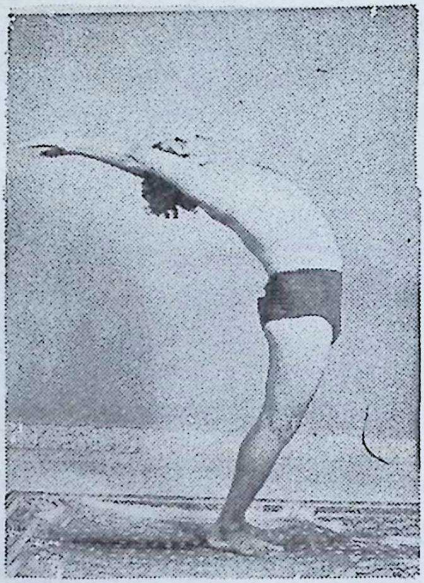

चन्द्रनमस्कारासन (Chandranamaskarasana)

लाभ—इस आसन के करने से शरीर में स्फूर्ति आती है। शरीर स्वस्थ और सुन्दर बनता है। पाचनशक्ति तीव्र बनती है। पेट साफ़ रहता है। मधुमेह में लाभ पहुँचता है। कमर के दर्द दूर हो जाते हैं। टाँगें मज़बूत बनती हैं। गला साफ हो जाता है। नेत्रों के अनेक रोग दूर हो जाते हैं।

यह आसन स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। मासिक-सम्बन्धी अनेक शिकायतें दूर हो जाती हैं।

उत्थित-एकपादहस्त-आसन

एक पाँव को ऊपर सीधा उठाकर एक हाथ से पकड़ने के कारण इसको 'उत्थित-एकपादहस्त-आसन' कहते हैं।

विधि—शरीर को तानकर सीधे खड़े रहें। दोनों पैर मिलाकर रखें। श्वास भरकर रोकें। अब कोई एक टाँग सामने सीधी करके उस ओर के हाथ से पाँव के अंगूठे को पकड़ें। भूमि पर रखी हुई टाँग तथा ऊपर उठाई हुई टाँग बिल्कुल सीधी रखें। किसी प्रकार का मोड़ या ढीलापन नहीं आना चाहिए। दूसरा हाथ पीठ के पीछे ले-जावें। दृष्टि सामने रखें। श्वास में घबराहट हो उससे पूर्व ऊपर उठाई टाँग भूमि पर रखें। दोनों हाथ सीधे रखकर श्वास छोड़ दें। पुनः दूसरी टाँग उठाकर विधि से करें।

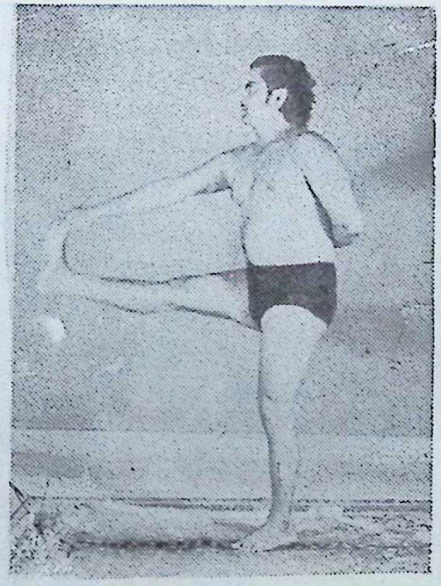

उत्थित-एकपादहस्त-आसन (Utthit-ekpad-hast-asana)

लाभ—इस आसन से टाँग तथा हाथ मज़बूत बनते हैं। कमर के दर्द ठीक हो जाते हैं। खाना जल्दी हज़म होता है। पेट हल्का बनता है।

स्त्रियाँ इस आसन को कर सकती हैं।

२६ उत्तानपादासन

पाँवों को उठाने के कारण इसको 'उत्तानपादासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर चित लेट जायें। दोनों हाथों को शरीर के साथ सटाकर कमर की तरफ रखें। दोनों पाँवों के अंगूठे मिला दें। टाँगें तानकर रखें। अब श्वास भरकर दोनों पैरों को धीरे-धीरे इतना ऊपर उठावें कि आपकी कमर भूमि से लग जावे, लगभग डेढ़-दो फुट के करीब। श्वास को जितना रोक सकें, उतनी देर पैर ऊपर रखें। घबराहट हो, उससे पूर्व बहुत धीरे-धीरे पैर भूमि पर रखें। शरीर ढीला करके श्वास निकाल दें।

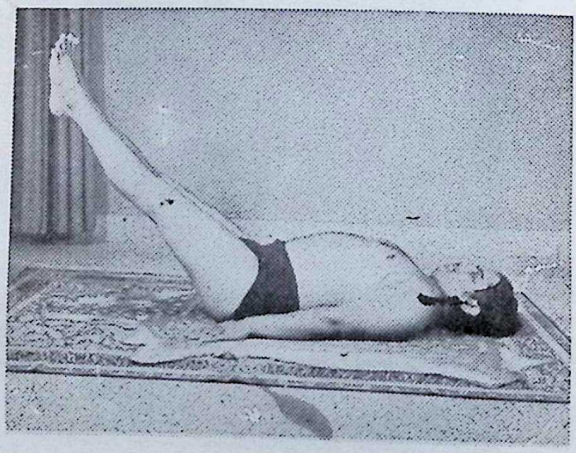

उत्तानपादासन (Uttanpad-asana)

लाभ—पेट की तमाम बीमारियों को दूर करता है। गैस निकलता है। चर्बी कम करता है। भूख लगाता है। मस्तिष्क और आँखों की कमज़ोरी दूर करता है। कमर तथा टाँगों को शक्तिशाली बनाता है। श्वास और रक्त की खराबियों को दूर करता है। विचारों को पवित्र बनाता है। ब्रह्मचर्य-पालन में मदद करता है।

हलासन

लेटकर दोनों पैरों तथा हाथों को पीछे की तरफ ले-जाने के कारण इस आसन को 'हलासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर चित लेटकर, दोनों पैर सीधे रखें। दोनों हाथ शरीर के साथ सटाकर रखें। अब 'रेचक' करके श्वास निकाल दें और टाँगों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर आकाश की तरफ़ ले-जावें। उसके पश्चात् टाँगें सीधी रखते हुए पीछे सिर की तरफ़ ज़मीन से लगावें। ठोडी को छाती से लगाकर 'कुम्भक' क़ायम रखें। टाँगें नीचे उतारने पर 'पूरक' तथा 'रेचक' क्रमशः गहरा करें।

हलासन (Halasana)

लाभ—इस आसन से अजीर्ण, कब्ज़ियत, अर्श, थाइराइड का कम विकास, अंगविकार, अकाल वृद्धावस्था, दमा, कफ, खून की खराबी

आदि विकार दूर हो जाते हैं। यकृत (Liver) इस आसन से अच्छा बनता है। छाती (Thorax) का विकास होता है। श्वास-क्रिया तेज़ होने से ऑक्सीजन होकर (oxygination) खून शुद्ध बनता है। गले की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। पेट के तमाम दर्द (Flatulence) मिटाता है। संधिवा (Rheumatism) मिटाता है। पेट की चर्बी (Fats) घटाता है। सिर (Head) के दर्द मिटाता है। वीर्य-विकार दूर होते हैं। बुरे विचारों का नाश होता है। नाड़ीतन्त्र (Nervous System) स्वच्छ बनता है। शरीर तेजस्वी और शक्तिशाली बनता है। सब लोगों को यह आसन अवश्य करना चाहिए।

स्त्रियाँ साधारण स्थिति में यह आसन कर सकती हैं। गर्भावस्था में यह आसन नहीं करना चाहिए।

सूर्य-दर्शनासन

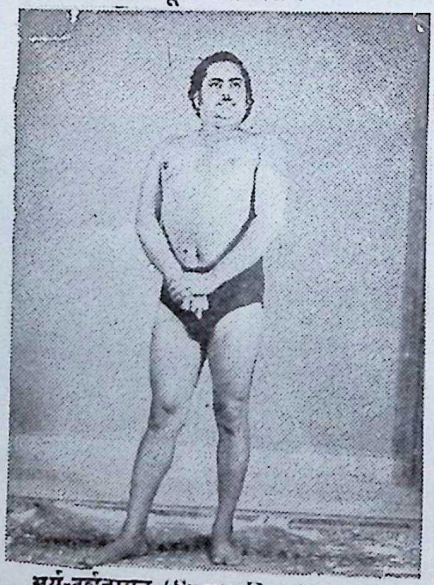

सूर्य-दर्शनासन (Surya-Darshnasana)

सीधे खड़े होकर सूर्य को देखने के कारण इस क्रिया को सूर्य-दर्शनासन कहते हैं।

विधि—प्रातः सूर्य निकलते तथा सायंकाल अस्त होते समय पूर्ण सहज भाव में सीधे खड़े होकर सूर्य को देखें। पाँव एक-दूसरे से कुछ दूर हों। दोनों हाथों को कलाई से सरलता से पकड़कर रखें। दृष्टि सूर्य की ओर हो। नदी, सागर, पहाड़ी अथवा हरियालीवाले प्रदेश में इस क्रिया को करते समय श्वास गहराई से अन्दर लेकर कुछ समय रोके रखें, तत्पश्चात् बाहर निकालें। यह क्रिया जितनी बार करेंगे, उतना अधिक लाभ होगा।

लाभ—प्राणायाम करते हुए इस अवस्था में सूर्य के सामने खड़ा होने से शरीर सूर्य के समान तेजस्वी बनता है। चमड़ी के रोग दूर होते हैं। रक्त की शुद्धि होती है। मुख की आकृति प्रभावशाली बनती है। मन शुद्ध-पवित्र होकर आनन्द की अनुभूति करता है। आँखों की ज्योति तथा आयु बढ़ती है। स्त्री-पुरुष दोनों यह आसन कर सकते हैं। लम्बे समय तक एक नज़र से सूर्य को देखते रहने से ध्यान लगाने का अच्छा अनुभव हो जाता है। इस बात का पूरा ध्यान रखें कि सूर्य में गर्मी की मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिए, अन्यथा नुकसान होने की पूरी सम्भावना रहती है।

एकपादोत्थित-अर्द्धबद्ध-पद्म-आसन

विधि—दोनों पाँव मिलाकर सीधे खड़े हो जावें। उसके पश्चात् दाईं टाँग मोड़कर उसके पाँव को बाईं टाँग की संधि में सटाकर लगावें। अब आप दाएँ हाथ को खींचकर ऊपर आकाश की ओर ले-जावें और बाएँ हाथ को नाभि के नीचे रखें। दृष्टि सामने रखें। कुछ समय खड़े रहें। समय को बढ़ाते जावें। दोनों टाँगों तथा हाथों को क्रमशः बदलते रहें।

लाभ—दोनों टाँगों-हाथों में शक्ति पैदा होती है। शरीर स्थिर बनता है। मन शान्त होकर चंचलता दूर भागती है। नदी के किनारे प्रातः-सायं इस आसन को करते हुए जो तपश्चर्या करता है, उसको सिद्धि प्राप्त होती है। भक्त और भगवान् का सामीप्य होता है।

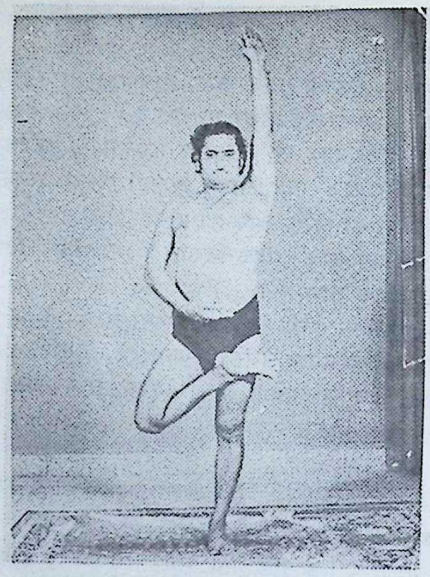

एकपादोत्थित-अर्द्धबद्ध-पद्म-आसन

(Ekpadotthit-Ardhabaddha-padmasana)

बुद्धि तीव्र बनती है। स्मरणशक्ति बढ़ती है।

स्त्री-पुरुष दोनों यह आसन कर सकते हैं।

उत्थित-एकपाद-जानुशिरासन

विधि—भूमि पर दोनों पाँव मिलाकर सीधे खड़े हो जावें। बाएँ पैर को आगे की ओर उठाकर दोनों हाथों से पाँव के पंजे को पकड़ें। सिर को झुकाकर नाक को ऊपर उठाई हुई टाँग से मिलाने का प्रयास करें। इस बात का पूरा ध्यान रखें कि दोनों टाँगें तनी हुई सीधी रहें। उनमें मोड़ नहीं आना चाहिए, नाक का टाँग से भले हो स्पर्श न हो। कुछ समय इस अवस्था में अपने-आपको स्थिर रखें। क्रमशः टाँगों को बदलते रहें।

लाभ—इस आसन के करने से टाँगें मजबूत बनती हैं। पेट की चर्बी घटती है। मूत्र-विकार दूर होता है। कमर तथा पीठ में होने-

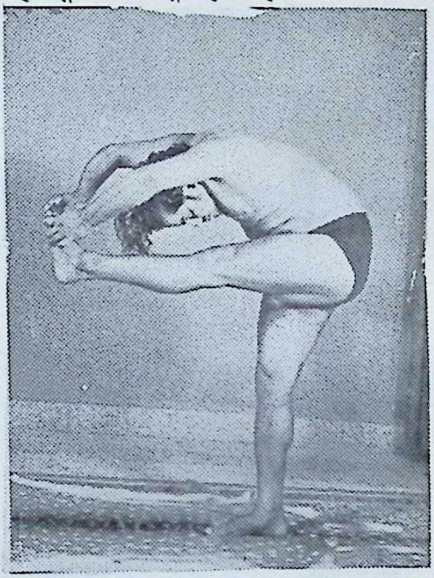

उत्थित-एकपाद-जानुशिरासन

(Utthita-ekapada-janu-shirasana)

वाले कष्ट दूर होते हैं। शरीर तेजस्वी बनता है। खाना शीघ्र हज़म होता है। पेट की गैस दूर होती है।

सामान्य अवस्था में स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं।

शुतरमुर्गासन

विधि—सीधे खड़े होकर आगे झुक जावें। हाथ भूमि पर रखें। उसके पश्चात् पाँव की एड़ियाँ उठाकर पाँव के पंजे तथा हाथ की हथेलियाँ भूमि से उठाकर सिर्फ अंगुलियों को खोलकर भूमि से लगाकर रखें। दृष्टि सामने की ओर रखें। सम्पूर्ण शरीर को पाँव और हाथ

की अंगुलियों के आधार पर रखें। उसके बाद भूमि पर रखकर धीरे-धीरे ऊपर उठें।

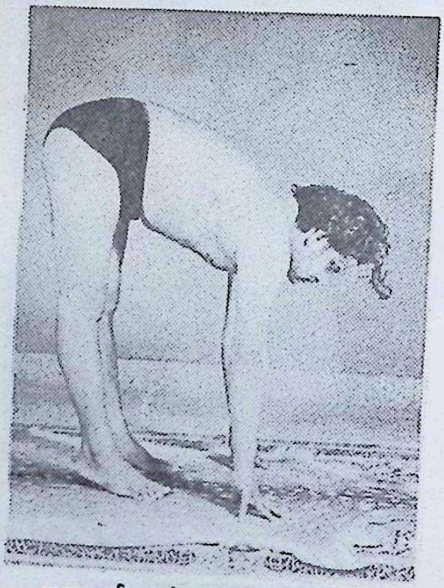

शुतरमुर्गासन (Shutarmurgasana)

लाभ—इस आसन को करने से जहाँ टाँगें और हाथ मज़बूत बनते हैं, वहाँ कमर की बीमारियाँ दूर होती हैं। हृदय मज़बूत बनता है। गठिया में लाभ होता है। उदर-सम्बन्धी बीमारियों में आराम मिलता है। यह आसन स्त्री-पुरुष दोनों कर सकते हैं।

गोमुखासन

इस आसन में घुटनों को इस प्रकार रखना पड़ता है जिससे उसका आकार गाय के मुख के समान बन जाता है, इसलिए इस आसन को 'गोमुखासन' कहा जाता है।

विधि—ज़मीन पर सुखपूर्वक बैठकर बायीं टाँग को मोड़कर दायीं

टाँग के बैठकवाले स्थान (नितम्ब) से हटाकर इस प्रकार लगावें जिससे उस टाँग का मुड़ा हुआ घुटना नाभि के ठीक सामने रहे। उसके पश्चात् दायीं टाँग को मोड़कर उसका घुटना बायें घुटने के ठीक ऊपर रखें। अब रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए दोनों हाथों के पंजों को मिलाकर ऊपर रखते हुए बाएँ घुटने को सहजता से पकड़कर इतना ऊपर करें, जिससे दोनों घुटनों के मध्य-भाग का आकार गोमुख-जैसा बन जाए। क्रमशः टाँगों को बदलें।

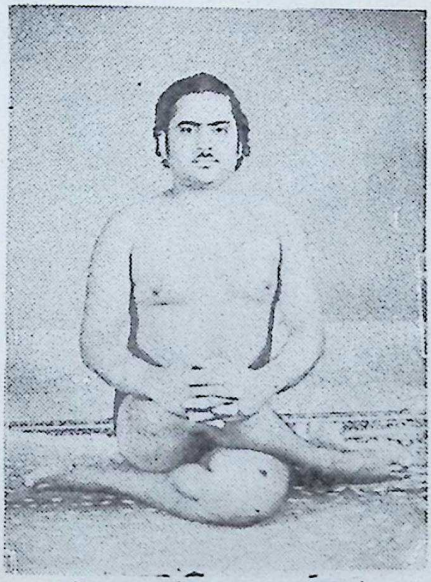

गोमुखासन (Gomukha-asana)

लाभ—इस आसन को करने से शरीर में गौ-जैसी स्फूर्ति आती है। टांगों में शक्ति तथा पैरों में आरोग्यता रहती है। गठिया की शिकायत दूर होती है। अण्डकोष-सम्बन्धी बीमारियाँ दूर होती हैं। प्रभु-भजन तथा स्वाध्याय के लिए यह आसन उपयोगी है। स्त्री-पुरुष दोनों इस आसन को कर सकते हैं।

मण्डूकासन

विधि—भूमि पर घुटनों को इस प्रकार रखें जिससे मुड़े हुए पाँवों के दोनों अंगूठे आपस में मिल जाएँ तथा दोनों मिली हुई एड़ियों पर नितम्ब रखकर सीधे बैठ सकें। तत्पश्चात् दोनों हाथों को मुड़े हुए घुटनों पर फैलाकर रखें। शरीर तथा बाहें सीधी रखें। दृष्टि सामान्य अवस्था में सामने रखें।

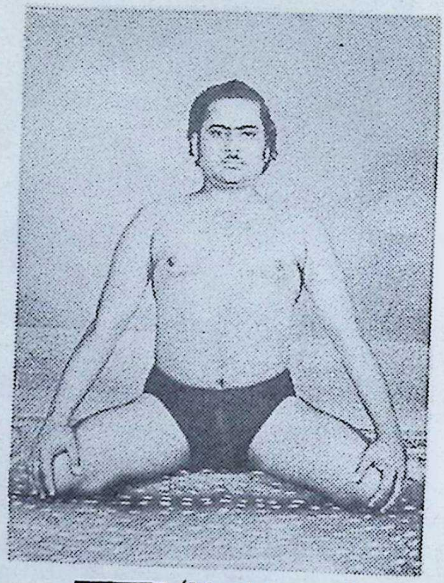

मण्डूकासन (Mandukasana)

लाभ—इस आसन के करने से टाँगों में शक्ति पैदा होती है। गठिया नहीं हो पाता। पेट की वायु निकलने में सुविधा होती है। मल-मूत्र का सरलता से त्याग होता है। पाचनशक्ति बढ़ती है। खाना जल्द हज़म होता है। शरीर नीरोग तथा फुर्तीला बनता है। स्त्री-पुरुष दोनों इस आसन को कर सकते हैं।

हस्तपाद-गुप्तासन

टाँगों और हाथों को गुप्त रखने के कारण इस आसन को 'हस्त-पाद-गुप्तासन' कहते हैं।

विधि—दोनों टाँगों को घुटनों से मोड़कर इस प्रकार बैठें जिससे दोनों पाँवों की एड़ियाँ तथा अँगूठे मिल जाएँ और नितम्ब दोनों एड़ियों पर टिक सकें। उसके पश्चात् दोनों हाथों को पीछे की ओर ले-जाकर परस्पर-विरोधी पाँव के अंगूठों को परस्पर-विरोधी दिशा के हाथों से पकड़ लें। अब आप श्वास गहरे लेकर छाती को फुलाते हुए रोक लें। अपनी सामर्थ्यानुसार श्वास रोककर धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालें।

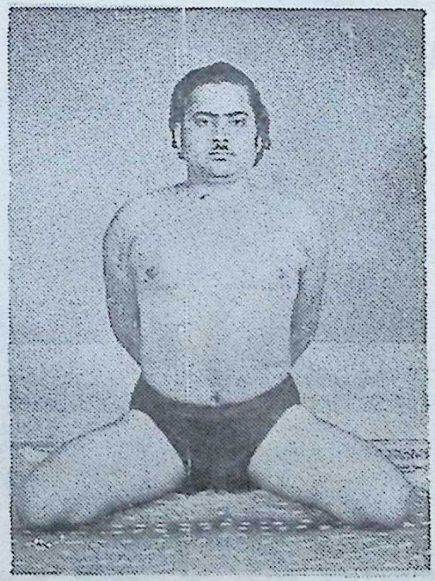

हस्तपाद-गुप्तासन (Hasta-Pada-Guptasana)

लाभ—इस आसन के करने से बाहें तथा टाँगें मजबूत बनती हैं।

दमे की बीमारी में लाभ होता है। पेट साफ़ रहता है। खून साफ़ होता है। श्वास की नलियाँ शुद्ध होती हैं। शरीर तेजस्वी बनता है। तेल की मालिश करके यह आसन करने से गठिया की बीमारी दूर होती है। मन को शान्ति मिलती है। स्त्री-पुरुष दोनों यह आसन कर सकते हैं।

योगासन

ध्यान लगाने के लिए जितने भी आसन बैठकर किये जाते हैं, उनमें प्रायः साधक को नींद आ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप भक्त

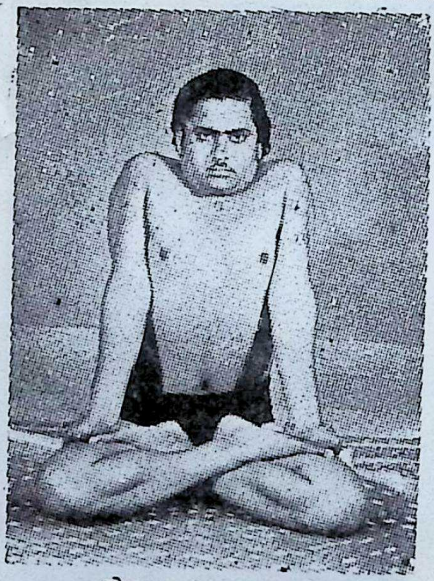

योगासन (Yogasana)

और भगवान् का योग नहीं हो पाता। इस आसन को प्राथमिक अवस्था में करने से यह शिकायत दूर हो जाती है। इसलिए भक्त-भगवान् का योग कराने में साधक होने के कारण इस आसन को

'योगासन' कहा जाता है।

विधि—'पद्मासन' लगाकर सरलता से सीधे बैठ जावें। उसके पश्चात् दोनों हाथों के तलवे, दोनों पाँवों के तलवों पर मोड़कर लगावें। दोनों बाहें तानकर रखें। श्वास की गति सामान्य रखकर, नासिका के अग्रभाग अथवा सफ़ेद दीवार पर आँखों के सामने रुपये के आकार का काला गोल निशान बनाकर या किसी दीपक के सामने अपनी दृष्टि लगावें।

लाभ—इस आसन को करने से ध्यान लगाने में मन लगता है। मन की चंचलता दूर होती है। आलस्य-प्रमाद टूटता है। प्रभु-भक्ति में मन लगने लगता है। बुद्धि तीव्र होती है। रक्त के रुके हुए प्रवाह में गति आती है। दिमाग़ प्रफुल्लित होता है। पुरुष तथा स्त्री सामान्य अवस्था में इस आसन को कर सकते हैं।

२८ नाभिपीड़ासन

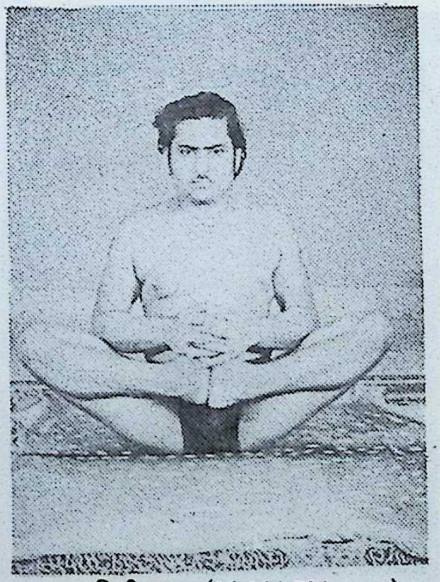

नाभिपीड़ासन (Nabhi-Pidasana)

पाँवों को मिलाकर नाभि से लगाते हुए पीड़न करने से इस आसन को 'नाभिपीड़ासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर बैठकर दोनों टाँगें सामने लम्बी मिलाकर रखें। उसके बाद दोनों हाथों से दोनों पाँवों को पकड़कर घुटने से मोड़ें। दोनों पाँवों के तलवों को मिला दें। तत्पश्चात् दोनों हाथों के पंजे मिलाकर पाँवों को नीचे से पकड़कर नाभि से स्पर्श करावें। ऐसा करने से घुटने भूमि से उठ जाएँगे। दृष्टि सामने रखें। सरलता से कुछ समय स्थिर रहें।

लाभ—पेट साफ़ होता है। हाज़मा तेज़ होता है। टाँगें मज़बूत बनती हैं। पेट की वायु निकलनी सरल होती है। गुदा-सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। वीर्य स्थिर बनता है। गर्भावस्था में यह आसन स्त्रियाँ न करें।

उत्कटासन

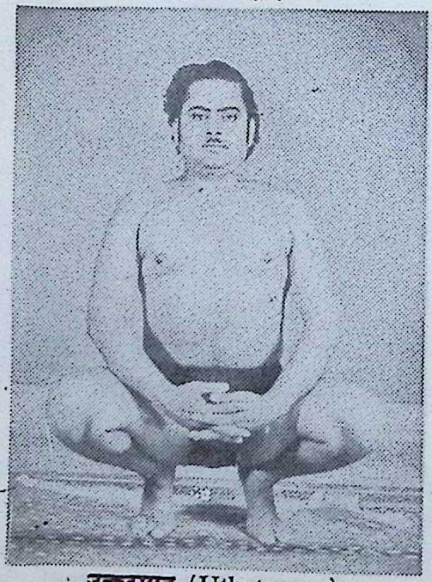

उत्कटासन (Utkatasana)

भूमि पर पाँव के पंजों पर शरीर को ऊपर उठाकर रखने से इस आसन को 'उत्कटासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर पाँव के बल ऐसे बैठें जैसे शौच के लिए बैठा जाता है। उसके पश्चात् पाँवों की एड़ियों को भूमि से उठा लें। सिर्फ पाँवों के पंजों के बल बैठ जावें। नितम्ब दोनों पाँवों की एड़ियों पर रखकर सावधानी से शरीर स्थिर रखें। दोनों हाथों के पंजों को मिलाकर बाहों को जाँघों पर सहजता से रखें। दृष्टि सामने हो।

लाभ—टाँगें मजबूत बनती हैं। पेट की वायु बाहर निकलने में सरलता रहती है। मल-मूत्र त्यागने में सुविधा रहती है। शरीर में स्फूर्ति आती है। स्त्री-पुरुष दोनों इस आसन को कर सकते हैं।

पाद-हस्तासन

पाद-हस्तासन (Pada-hastasana)

हाथों से पाँवों को पकड़ने के कारण इस आसन को 'पाद-हस्तासन' कहते हैं।

विधि—सर्वप्रथम भूमि पर पीठ के बल लेट जावें। उसके पश्चात् भूमि पर दोनों पाँवों को मिलाकर ऊपर उठावें। अब हाथों को ऊपर ले-जाते हुए श्वास निकालकर दोनों पाँवों के अंगूठों को पकड़ें। दोनों टाँगें मिलती हुई हों। टाँगें तथा हाथ तानकर सीधे रखें। तत्-पश्चात् सिर को पूरी कोशिश करके टाँगों की ओर ले-जावें। ध्यान रखें कि टाँगों में मोड़ न आने पाए। उसके बाद हाथ-पाँव खोलकर श्वास निकालते हुए भूमि पर सीधे लेटकर शरीर ढीला छोड़ दें।

लाभ—इस आसन से कमर के दर्द दूर होते हैं। रीढ़ की हड्डी में लचकीलापन आने से शरीर की अनेक बीमारियाँ ठीक होती हैं। हृदय को आराम मिलता है। पेट हल्का बनता है। पाचनशक्ति अच्छी बनती है। उदर-रोग ठीक होते हैं। टाँगें और हाथ मज़बूत बनते हैं। सामान्य अवस्था में स्त्रियाँ यह आसन कर सकती हैं। इससे उनके गर्भाशय-सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।

२९ सुप्तवज्रासन

विधि—टाँगें मोडकर पाँवों के तलवों को इतनी दूरी पर रखें, जिससे नितम्ब सरलता से भूमि पर रखे जा सकें। लगभग एक फुट की दूरी दोनों पाँवों के मध्य में होनी चाहिए। उसके पश्चात् पीछे की ओर झुककर पीठ के बल लेट जावें। तत्पश्चात् पीठ को भूमि से ऊपर उठाकर सिर को पीठ की ओर जितना मोड़ सकें, उतना मोड़ें। दोनों हाथों को टाँगों पर रखें। दृष्टि को भूमि पर सिर के पास जितना समीप ला सकें, लावें। गहरे श्वास लें तथा छोड़ें। मूल स्थिति में आने के लिए सर्वप्रथम गर्दन धीरे-धीरे सीधी करके सीधे बैठें। टाँगें खोलकर शरीर को ढीला छोड़कर सीधे लेट जावें।

लाभ—टाँगें मज़बूत बनती हैं। गले की बीमारियाँ दूर होती हैं। प्राणायाम करने से श्वास और दमे की बीमारी दूर हो जाती है। आँखों की ज्योति बढ़ती है। पेट हल्का होता है। छाती चौड़ी बनती है। नाभि मूल स्थान से हट गई हो तो यह ठीक हो जाती है। उदर-

रोगों से मुक्ति मिलती है। पाचनशक्ति अच्छी बनती है। कमर-सम्बन्धी दर्द दूर हो जाते हैं।

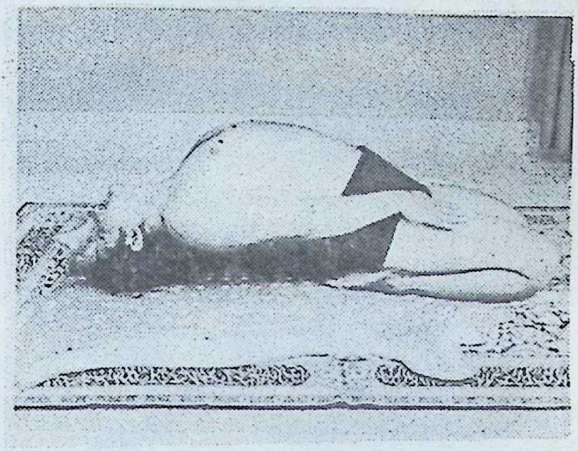

सुप्तवज्रासन (Supt-Vajrasâna)

स्त्रियाँ गर्भावस्था में यह आसन न करें। अन्य मासिक धर्म-सम्बन्धी तमाम शिकायतों में यह आसन हितकर है।

लतासन

पेड़ की लताओं के समान हाथ-पाँव फैला देने से इस आसन को 'लतासन' कहते हैं।

विधि—भूमि पर सीधे लेट जावें। उसके पश्चात् टाँगों को ऊपर उठाकर सिर की ओर पीछे ले-जावें। तत्पश्चात् पाँवों तथा हाथों को पूरी तरह फैला दें। दृष्टि दोनों टाँगों के मध्य में से आकाश की ओर रखें। दाँतों को सामान्य अवस्था में भिड़ाकर रखें, मुख न खोलें। नाक से साँस लें। टाँगों को वापस धीरे-धीरे ले-जावें।

लाभ—इस आसन को करने से सम्पूर्ण शरीर का खून शुद्ध होकर

शरीर तेजस्वी बनता है। दाँत मज़बूत होते हैं। आँखों की ज्योति बढ़ती है। अकाल बाल सफेद नहीं होते। चेहरा तेजस्वी बनता है। मस्तिष्क प्रफुल्लित रहता है। दमे की बीमारी दूर होती है। पाचन-क्रिया तीव्र बनती है। पेट साफ रहता है। भुजाएँ मज़बूत बनती हैं।

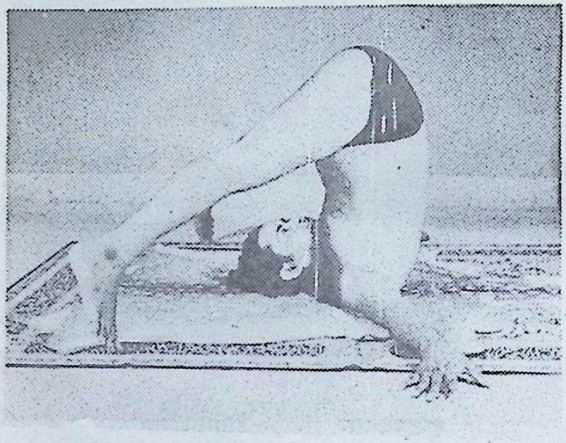

लतासन (Latasana)

पक्षाघात शीघ्र हावी नहीं होता। चमड़ी के रोग नहीं होते। रीढ़ की हड्डी लचकीली बनने से मेधा-शक्ति बढ़ती है। शरीर स्वस्थ और सुन्दर बनता है। हृदयरोग वाले तथा गर्भवती स्त्रियाँ यह आसन न करें।

रोग और आसन

१. पेट की बीमारियों में—उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, वज्रासन, योगमुद्रासन, भुजंगासन, मत्स्यासन।
२. सिर की बीमारियों में—सर्वांगासन, शीर्षासन, चन्द्रासन।
३. मधुमेह—पश्चिमोत्तानासन, नौकासन, वज्रासन, भुजंगासन, हलासन, शीर्षासन।

४. वीर्यदोष—सर्वांगासन, वज्रासन, योगमुद्रा।
५. गला—सुप्तवज्रासन, भुजंगासन, चन्द्रासन।
६. आँखें—सर्वांगासन, शीर्षासन, भुजंगासन।
७. गठिया—पवनमुक्तासन, पद्मासन, सुप्तवज्रासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन।
८. नाभि—धनुरासन, नाभि-आसन, भुजंगासन।
९. गर्भाशय—उत्तानापादासन, भुजंगासन, सर्वांगासन, ताड़ासन, चन्द्रनमस्कारासन।
१०. कमर—हलासन, चक्रासन, धनुरासन, भुजंगासन।
११. फेफड़े—वज्रासन, मत्स्यासन, सर्वांगासन।
१२. यकृत—लतासन, पवनमुक्तासन, यानासन।
१३. गुदा, बवासीर, भगंदर आदि में—उत्तानपादासन, सर्वांगासन, जानुशिरासन, यानासन, चन्द्रनमस्कारासन।
१४. अनिद्रा—शीर्षासन, सर्वांगासन, हलासन, योगमुद्रासन।
१५. दमा—सुप्तवज्रासन, मत्स्यासन, भुजंगासन।
१६. गैस—पवनमुक्तासन, जानुशिरासन, खगासन, योगमुद्रा, वज्रासन।
१७. जुकाम—सर्वांगासन, हलासन, शीर्षासन।

प्राणायाम

(Pranayama : Breath-control)

"तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।" यो० द०

जो वायु बाहर से भीतर जाता है उसको 'श्वास' और जो भीतर से बाहर जाता है उसको 'प्रश्वास' कहते हैं। प्रश्वास को बल-पूर्वक नासिका द्वारा बाहर फेंककर बाहर ही यथाशक्ति रोकना। इस बाह्य क्रिया को तीन बार करने के पश्चात् श्वास को धीरे-धीरे बाहर से भीतर ही रोकना। जब घबराहट होने लगे तब धीरे-धीरे बाहर निकाल देना। इस आभ्यन्तर क्रिया को सामर्थ्य और इच्छानुसार बारंबार करते रहना। इस प्रकार अभ्यास करते-करते कुछ काल के पश्चात् वायु रुकी होने की दशा में आप-से-आप जहाँ-की-तहाँ स्थिर

होने लगती है और कुछ काल तक स्थिर रहती है, तब वायु को बाहर न निकालना किन्तु आप-से-आप उसका निवारण होने देना। उस समय वायु बाहर से भीतर आना भी बन्द रहती है। यह 'स्तम्भवृत्ति' धारणा का स्वरूप धारण करती है। जब तक धारणा में प्रवृत्ति नहीं होती, तब तक यह स्तम्भवृत्ति प्रत्येक बार नहीं होती, कभी होती और कभी नहीं भी होती है।

जब तक स्तम्भवृत्ति न हो, एवं जिस बार स्तंम्भवृत्ति हो तब आभ्यन्तर में घबराहट होने पर वायु को कुछ बाहर की ओर लावें, परन्तु बाहर की वायु भीतर की ओर लाकर उसे बीच ही में रोक दें। इसी प्रकार यथा-रुचि रोकते हुए बाहर लावें; ऐसे ही बाह्य क्रिया में भीतर लावें। यह 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी क्रिया' है। ये चारों क्रियायें मिलकर एक ही प्राणायाम हुआ। यह चतुर्थ क्रिया बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया का अभ्यास होने के पश्चात् कुछ काल में हो सकती है। जब इन चारों क्रियाओं का अभ्यास हो जाता है, तब योगाभ्यासी अपनी इच्छा और किंचित् प्रयत्न से ही बाहर की वायु को बाहर और भीतर की वायु को भीतर, जहाँ-की-तहाँ एक-साथ रोक सकता है। ज्यों-ज्यों योगाभ्यासी का अभ्यास बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्राणायाम की स्थिति देश, काल और संख्या के परिणाम से दीर्घ और सूक्ष्म हो जाती है।

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।" यो० द०

"किंच धारणासु च योग्यता मनसः।" यो० द०

प्राणायाम करने से प्राणापानादि वायु, रक्त-मांसादि धातु, मन-बुद्धि आदि अन्तःकरण-चतुष्टय और श्रोत्र, नेत्र, वाणी आदि की स्थूलता और विकार दूर हो जाते हैं एवं 'ज्ञान' और 'आनन्द' की प्राप्ति के बाधक आवरणों का नाश हो जाता है। प्राणायाम करने ही पर 'प्रत्याहार' द्वारा मन की धारणाओं में योग्यता होती है, अर्थात् परमात्मा का ध्यान, निश्चयात्मक ज्ञान-विज्ञानादि को प्राप्त किया जा सकता है।

Breathing is the best promoter of life—अर्थात् श्वास ही जीवन की वृद्धि का सर्वोत्तम प्रकर्त्ता है।

'हठयोगप्रदीपिका' तथा 'घरण्ड संहिता' आदि ग्रन्थों में आठ प्रकार के प्राणायाम का उल्लेख मिलता है। यथा—

सूर्यभेदनमुज्जायी सीतकारी शीतली तथा,
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः ॥ हठ० प्र० २-४४

१. **सूर्यभेदन**—Surya-Bhedan
२. **उज्जायी**—Ujjayi
३. **सीतकारी**—Sitkari
४. **शीतली**—Shitali
५. **भस्त्रिका**—Bhastrika
६. **भ्रामरी**—Bhramari
७. **मूर्च्छा**—Murchha
८. **प्लाविनी**—Plavini

अब हम इन आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम की संक्षिप्त विधि तथा उनके करने से लाभों का वर्णन करते हैं।

१—सूर्यभेदन (Surya-Bhedan)

विधि—स्वच्छ स्थान पर भूमि पर मृगछाल अथवा कोमल वस्त्र बिछाकर, उसपर स्वस्तिकासन, सिद्धासन अथवा पद्मासन, जो भी सरलता से लगा सकते हों, लगावें। ग्रीवा, सिर, शरीर सीधा रखें। अब दाहिनी नासिका से, जिसको 'सूर्य-नाड़ी' कहते हैं, 'पूरक' करें (अर्थात् श्वास अन्दर लें)। 'कुम्भक' अवस्था में अर्थात् श्वास जितना समय रोक सकें, रोकें। उसके पश्चात् बाईं नासिका, जिसको 'चन्द्र-नाड़ी' कहते हैं, उससे 'रेचक' करें अर्थात् श्वास धीरे-धीरे लम्बी अवस्था में बाहर निकालें।

लाभ—इस क्रिया से शरीर में गर्मी पैदा होती है। सर्दी के दिनों में यह क्रिया अवश्य करनी चाहिए। पाचनशक्ति बढ़ती है। रक्त और श्वास की नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। शरीर में स्फूर्ति आती है। मस्तिष्क स्वच्छ बनकर ताज़गी महसूस करता है। वात-विकार नष्ट हो जाते हैं। शरीर तेजस्वी बनता है। आनन्द की अनुभूति होती है। शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर होती है। इसको स्त्री-पुरुष नित्य

अवश्य किया करें।

२—उज्जायी (Ujjayi)

विधि—स्वस्तिकासन, सिद्धासन, अथवा पद्मासन में से किसी सरल अनुभव होनेवाले आसन में बैठकर बलपूर्वक श्वास को पूर्णरूप से बाहर निकाल दें। श्वास को बाहर निकालते समय सूक्ष्म ध्वनि की-सी आवाज़, जैसे निद्रा-अवस्था में होती है, वैसी होनी चाहिए। पुनः श्वास लम्बा लेकर अन्दर भर लें। छाती को जितना हो सके, फुलाने की कोशिश करें। श्वास पूर्णरूप से फेफड़ों में भर जाए, ऐसा प्रयास करें। उसके पश्चात् श्वास रोके बिना धीरे-धीरे पूर्णरूप से बाहर निकाल दें। श्वास बाहर निकालते समय कण्ठ से साधारण-सी आवाज़ निकलती है।

लाभ—यह सरल क्रिया बहुत ही लाभदायक है। चलते-फिरते, लिखते-पढ़ते, बैठते-लेटते हुए भी कर सकते हैं। शरीर की गर्मी को शान्त करती है। जठराग्नि तीव्र बनाती है। पेट साफ़ करती है। कफ़ आदि दोषों को दूर करती है। शरीर में कान्ति बढ़ाती है। भूख बढ़ाती है।

स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सब इसको नित्य किया करें।

३—सीतकारी (Sitkari)

विधि—स्वस्तिक, सिद्ध, अथवा पद्मासन लगाकर सीधे बैठ जावें। जीभ को ऊपर-नीचे के दाँतों के बीच में ले लेवें। सरलता से दाँत भिड़ा दें। होंठ खुले रखें। अब 'सी' जैसी आवाज़ करते हुए, मुख से गहरा श्वास लेने के पश्चात् यथाशक्ति उसे अन्दर रोक लें। उसके बाद नासिका से श्वास शनैः-शनैः बाहर निकाल दें।

लाभ—यह क्रिया गर्मी के दिनों में विशेष लाभ पहुँचाती है। गर्मी दूर करती है। कुपित पित्त का शमन करती है। भूख लगाती है। निद्रा लगाती है। आलस्य को दूर भगाकर शरीर सुन्दर बनाती है। दाँतों के रोग दूर होते हैं। स्त्रियाँ भी यह कर सकती हैं।

४—शीतली (Shitali)

विधि—काक-चंचु की तरह जीभ को गोल करके मुख से थोड़ी बाहर निकालें। अब जीभ के गोलाकार भाग से श्वास अन्दर ले-जावें। उसके पश्चात् 'कुम्भक' करके श्वास रोक लें और मुख को बन्द कर दें। दम घुटने से पूर्व नासिका से श्वास पूर्णरूप से बाहर निकाल दें।

लाभ—सर्व प्रकार के ज्वरों में इस क्रिया से लाभ पहुंचता है। पेट की बीमारियाँ दूर होती हैं।

स्त्री-पुरुष दोनों इसको कर सकते हैं।

५—भस्त्रिका (Bhastrika)

विधि—स्वस्तिक, सिद्ध अथवा पद्मासन में बैठ जावें। दोनों नासिकाओं से श्वास इस प्रकार लें और निकालें जैसे लोहार की धौंकनी लेती है और निकालती है। श्वास बाहर निकालते समय पेट अन्दर लें और लेते समय पेट को बाहर निकालें। थकान महसूस होने पर दाईं नासिका से 'पूरक' करें। फिर यथासम्भव 'कुम्भक' करें। अब बाईं नासिका से 'रेचक' करें। पुनः पूर्वोक्त 'पूरक' करें। क्रमशः यह किया करें।

लाभ—योगी लोग कुंडलिनी की जागृति के लिए इस क्रिया को करते हैं। जठराग्नि तीव्र बनती है। वात-पित्त-कफ़ आदि की शिका-यतें दूर होती हैं। गले के रोग दूर होते हैं। खाँसी एवं दमा दूर करती है। हृदय मज़बूत बनाती है। रक्त और श्वास की नसों और नाड़ियों में से विकार नष्ट करती है। यह बहुत ही उत्तम क्रिया है।

६—भ्रामरी (Bhramari)

विधि—स्वस्तिक, सिद्ध, अथवा पद्मासन लगाकर सीधे बैठ जावें। बाईं नासिका से श्वास लें। श्वास लेते समय भ्रमर-जैसी आवाज़ आनी चाहिए। उसके पश्चात् यथाशक्ति 'कुम्भक' करके भ्रामरी की आवाज़ की भाँति दायीं नासिका से श्वास धीरे-धीरे निकाल दें अर्थात् 'रेचक' करें।

लाभ—सिर का भारीपन दूर होता है। नाक साफ़ होकर श्वास लेने में सरलता होती है। चित्त की वृत्तियाँ स्थिर बनती हैं। मन प्रफुल्लित रहता है। सन्ध्योपासना के समय यह क्रिया नित्य करनी चाहिए।

७—मूर्च्छा (Murchha)

विधि—यह क्रिया सिद्धासन लगाकर ही करनी चाहिए। अन्य क्रियाओं की अपेक्षा यह क्रिया कुछ कठिन है। योग्य मार्गदर्शक की उपस्थिति में इसकी पूर्णरूप से जानकारी ले लेनी चाहिए, अन्यथा हानि भी हो सकती है।

सर्वप्रथम आसन में सीधे बैठकर, दोनों नासिकाओं से गहरा श्वास लें। उसके पश्चात् श्वास अन्दर रोक लें। ठोडी को, गले के नीचे जो गड्ढा है उसमें टिकाकर 'जालन्धर बंध' लगावें। फिर दायें और बायें हाथों की अंगुलियों को निम्न अवस्था में रखें। अंगूठे के साथवाली दोनों अंगुलियों से आँखों के नीचे ऊपरवाली पलकों को कोमलता से बन्द करें। तीसरी अंगुली से नाक को दोनों ओर से दबाकर बन्द कर लें। चौथी छोटी अंगुली से मुख के नीचेवाले होंठ को नीचे से दबाकर ऊपर उठावें और होंठों को बन्द कर दें। श्वास अन्दर रोककर 'मूल-बन्ध' तथा 'उद्यान-बन्ध' लगावें। दम घुटने से पूर्व अंगुलियों को छोडकर दोनों नासिकाओं से श्वास बाहर निकाल दें।

लाभ—चंचल मन एकाग्र होता है। रक्त, श्वास तथा चमड़ी के रोग दूर हो जाते हैं। वीर्य की रक्षा होती है। पेट की तमाम बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। स्वप्नदोष की शिकायत नहीं रहती। पाचन-क्रिया बहुत सुन्दर बन जाती है। शरीर में शक्ति का संचार हो जाता है। 'मूल-बन्ध' लगाने से कुंडलिनी के जागरण में मदद मिलती है।

यह क्रिया योग के किसी अच्छे जानकार से सीखनी चाहिए। स्त्रियाँ यह क्रिया न करें। योग में विशेष रुचि रखनेवाली स्त्रियाँ भी कर सकती हैं।

८—प्लाविनी (Plavini)

विधि—पद्मासन लगाकर, 'पूरक' करके, श्वास पूर्णरूप से लेकर,

पेट को फुला दें। पुनः 'रेचक' करके श्वास बाहर निकालकर पेट को अन्दर की ओर ले-जावें। पुनः 'पूरक' करें। क्रमशः की गई इस क्रिया को 'कुम्भक' प्राणायाम कहते हैं।

लाभ—शरीर हल्का बन जाता है। पेट की सफ़ाई हो जाती है जिससे पाचनक्रिया अच्छी हो जाती है। बवासीर एवं वायु आदि के विकार नष्ट हो जाते हैं। पेट पतला और छाती चौड़ी बनती है। इसका विशेष अभ्यास हो जाने पर अथाह जल में मनुष्य कमलवत् काफ़ी समय तैर सकता है और जल पर चल भी सकता है।

प्रत्याहार

(Pratyahara—Non-attachment)

शीत, उष्ण, क्षुधा और तृषा के निवारणार्थ यथोचित प्रबन्ध करके बाहर के पट बन्द कर भीतर के पट खोल देना। ईश्वर से ही मिलना, ईश्वर को ही देखना अर्थात् चिन्तन करना, ईश्वर से ही बात (स्तुति-प्रार्थना) करना और ईश्वर की ही बात सुनना।

जो योगी यमनियमादि का विधिवत् पालन कर लेता है, उसे ऐसा करने में कठिनता नहीं होती और ईश्वर भी उसको बड़े प्रेम से अपनाते हैं, इसलिए उसका 'चित्त' स्थिर हो जाता है, क्योंकि यम, नियम, आसन और प्राणायाम की सफलता से सर्वव्यापक, अन्तर्य्यामी, प्रीतिसाधक परमात्मा के साथ थोड़ा ही अन्तर अर्थात् 'ज्ञान' की दूरी रह जाती है। वह अन्तर प्रत्याहार से दूर हो जाता है। यदि संस्कार-दोष के कारण मन कुछ उचाट हो तो जब तक उचाट रहे तब तक किसी नदी के किनारे विचरना अथवा ईश्वर में प्रेम बढ़ानेवाले छन्दों का 'कीर्तन' व 'श्रवण' करना चाहिए।

श्वास-प्रश्वास की गति का अवरोध होने के समय प्रणयनिधि परमात्मा को समीप उपस्थित और अन्तर्य्यामी जानकर उनसे बड़ी सभ्यता, सरलता, शान्ति और सावधानी के साथ आवश्यक स्पष्ट और प्रेमपूर्वक मन के द्वारा ही बातें करना। प्रभु अत्यन्त सरल-स्वभाव, प्रेमी और निरभिमानी होने से उत्तर भी देंगे; परन्तु अनभ्यास होने से वह उत्तर सुनाई न देगा; पर उसका प्रभाव आत्मा पर अवश्य पड़ेगा।

जब परमात्मा का चिन्तन करने एवं प्रज्ञा द्वारा साक्षात्कार करने का अभ्यास होकर चित्त एकाग्र होगा, तब अवश्य सुनाई देगा, अर्थात् उस उत्तर का ज्ञान प्राप्त होगा। उसकी विधि यह है कि प्रणव-सहित सप्त व्याहृतियों का अर्थ मननपूर्वक स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना। यथा :

ओम् भूः—आप मेरे आत्मिक जीवन के प्राण और स्वामी हैं।

ओम् भुवः—आप मेरे अविद्यादि क्लेश दूर करनेवाले मन और माता हैं।

ओम् स्वः—आप आनन्दप्रद आत्मा और मित्र हैं।

ओम् महः—आप मुझे उच्च बनानेवाले हृदय और गुरु हैं।

ओम् जनः—आप मेरे आधार, जन्म व मुक्तिदाता नाभि और पिता हैं।

ओम् तपः—आप अपने ज्ञान और बल से प्रेरक और सहायक भुजा और बंधु हैं।

ओम् सत्यम्—आप मुझे असत् से निकालकर सत्यस्वरूप में लय कर लेनेवाले प्रज्ञा और सखा हैं।

जैसे-जैसे प्राणायाम की दीर्घ और सूक्ष्म स्थिति होती जावे, वैसे-ही-वैसे प्रणव-सहित 'सप्तव्याहृतियों' का अर्थ उच्च, सूक्ष्म और विस्तृत करते हुए परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करना। इन्हीं के आधार और आश्रय से प्रत्येक विषय का विचार और निश्चय करना। अन्त में केवल प्रणव (ओ३म्) का ही चिन्तन और ध्यान करना।

प्राणायाम और प्रत्याहार योग की 'साधन-दशा' हैं और धारणा, ध्यान तथा समाधि 'सिद्धि-दशा' हैं।

जब जीवात्मा परमात्मा के प्रेम में मग्न रहता है, तब चित्त की प्रवृत्ति रजस् और तमस् की नहीं होती। मन वश में हो जाता है और इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती हैं। ईश्वर का ऐसा स्वभाव लगता है। तब सत्य ही में प्रवृत्ति और प्रीति रहती है, असत्य में नहीं।

धारणा

(Dharna—Concentration)

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।" यो० द०

नाभि आदि स्थानों में वायु का, और साथ ही परमात्मा का ध्यान करके मन की स्थिरता होने से चित्तवृत्ति का विरोध होना 'धारणा' है। प्राणायाम करते-करते नाभि आदि स्थानों में वायु की स्वतः स्थिरता होती है। फिर अभ्यास करते-करते दृढ़भूमि हो जाता है। तब योगी जिस स्थान में वायु का निरोध करना चाहता है कर लेता है और वहाँ प्राणापानादि के विकार दूर होकर 'दिव्य शक्ति' प्राप्त होती है। नाभिचक्र में संयम करने से जठराग्नि में सूक्ष्मता और विशेष बल आ जाता है, जिसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। तब उसे शरीर के सब अंग-प्रत्यंगों का ज्ञान होता है। रस शीघ्रता से बनता है। मलमूत्र निर्गंध और थोड़ा होता है। शरीर में कोई विकार और रोग उत्पन्न नहीं होते। अंग-प्रत्यंगों में हल्कापन, स्फूर्ति और तृप्ति होकर देह सुगन्धित, वाणी मधुर और कान्ति उज्ज्वल हो जाती है। कपाल में संयम करने से बुद्धि अति सूक्ष्म हो जाती है, जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को ग्रहण करती है। 'नासिका' के अग्रभाग में 'दिव्य गंध' और 'जिह्वा' के अग्रभाग में 'दिव्य रस' का अनुभव व ज्ञान होता है। कंठकूप में संयम करने से क्षुधा-तृषा पर जय प्राप्त होती है। वायु द्वारा उत्तमोत्तम रस प्राप्त होने से क्षुधा-तृषा की निवृत्ति और प्रसन्नता प्राप्त होती है। हृदयकमल में संयम करने से चित्त स्फटिक शिला की भाँति स्थिर और स्वच्छ हो जाता है। इसी प्रकार अन्य अंग-प्रत्यंगों और नस-नाड़ियों में संयम करने से शरीरमात्र पर जय प्राप्त होती है। शीतोष्ण की निवृत्ति, दिव्य दृष्टि, दिव्य श्रवणशक्ति, दिव्य चेष्टा और बल, दिव्य गति, दिव्य क्रिया और दिव्य प्रवृत्ति हो जाती है।

योगाभ्यासी को उचित है कि अपनी चित्तवृत्ति को वायु के गमनागमन, देश-विदेश और सिद्धियों के रहस्य में न लगा देवे, क्योंकि ऐसा करने से ध्यान से वंचित रह जाना पड़ता है।

ध्यान

(Dhyana—Meditation)

"तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।" यो० द०

'धारणा' की दशा में ईश्वरोपासना करते-करते जब धारणा की स्थिति हृदयकमल में होती है, जब जीवात्मा परमात्मा में मग्न हो जाता है। केवल इतना स्मरण रहता है कि मैं ईश्वर का साक्षात्कार कर रहा हूँ। उस समय जीवात्मा समुद्र के समान गम्भीर और स्थिर हो जाता है। मन निर्विषय होता जाता है। निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। योगी की वृत्ति छोटे-छोटे बालकों के समान भोली-भाली होती जाती है, और संसार के व्यवहारों को भूलता जाता है। मानो संसार की ओर से सोता और ईश्वर की ओर जागता जाता है। प्रायः देखने, सुनने और बोलने की ओर प्रवृत्ति नहीं होती। 'ध्यान' के अतिरिक्त अन्य कुछ प्रिय नहीं लगता।

समाधि

(Samadhi—Affinity with God)

"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।" यो० द०

'ध्यान' संस्कारमात्र रह जाना, स्वरूप शून्य के समान हो जाना 'समाधि' है। जैसे मूर्च्छित करनेवाली वस्तु सुँघाने से मूर्च्छित हो जाता है, वैसे ध्यान करते-करते जीवात्मा अन्तर्ध्यान होकर परमात्मा के बीच मग्न हो जाता है। इसमें मूर्च्छित होना 'धारणा' का और परमात्मा में मग्न हो जाना 'ध्यान' का परिणाम है। जैसे अग्नि में तपाते-तपाते लोहा अग्निवत् हो जाता है, वैसे 'ध्यान' करते-करते योगी अपने-आपको भूलकर ईश्वरवत् हो जाता है। जल में डुबकी लगानेवाले की भाँति योगी परमात्मा के बीच मग्न होकर फिर बाहर को आ जाता है।

'समाधि' की दशा में योगी आनन्दमय और उसका शरीर अग्निमय हो जाता है। उस समय उसे यह ज्ञात नहीं होता कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, क्या करता हूँ, अर्थात् अपने को भूल जाता है। तब योगी की वृत्ति सांसारिक मनुष्यों से भिन्न हो जाती है और 'प्रज्ञा' 'ऋतम्भरा' हो जाती है जो सत्य ही को ग्रहण करती है। जैसे सृष्टि में सूर्य, चन्द्र, इन्द्र (विद्युत्), पृथिवी, जल, अग्नि और वायु आदि से क्रिया की सिद्धि होती है, वैसे योगी एक अद्भुत सृष्टि को देखता है। यहाँ ब्रह्म

ही वायु है अर्थात् योगी की क्रिया की सिद्धि और इच्छा की पूर्ति 'ब्रह्म' ही से होती है। 'ब्रह्म' ही सूर्य अर्थात् ज्ञान का प्रकाश करता है। ब्रह्म ही चन्द्रमा अर्थात् आनन्दमय होता है। ब्रह्म ही विद्युत् अर्थात् बल है। ब्रह्म ही पृथिवी है जिसमें योगी स्थित है। ब्रह्म ही जल है जो शान्त, निर्मल और पवित्र रखता तथा तृप्ति और तुष्टिकारक है। 'ब्रह्म' ही अग्नि अर्थात् प्राण है। ब्रह्मशक्ति से योगी का शरीर और मन वश में हो जाता है। हर्ष, शोक, शीत, उष्ण, क्षुधा और तृष्णा आदि पर विजय पा लेता है। वह हल्का, गुरु, अचल, वेगगामी और अन्तर्ध्यान हो जाता है। जल में डूब नहीं सकता, कंटक नहीं लगता और कोई दुःख नहीं होता। हाथी के समान बल प्राप्त कर लेता है। दूसरे के चित्त का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। बहुत दूर की बात सुन और वस्तु देख सकता है। सर्व ग्रहों, नक्षत्रों के समूह और तारागणों की गति, स्थिति तथा समस्त भुवन का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सिद्ध पुरुषों से मिल सकता है। पूर्व-जन्म तथा भूत और भविष्य का ज्ञान होता है। अपनी इच्छानुसार मृत्यु को प्राप्त हो पुनर्जन्म को प्राप्त कर सकता है। समस्त भूतों और प्राणियों को अपने अनुकूल बना सकता है।

"तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।" यो०द०

सिद्धियों के वैराग्य से सब दोषों का बीज-नाश हो जाता है, तब योगी 'कैवल्य' को प्राप्त हो जाता है। हृदय की अविद्या, अज्ञान की गाँठ खुल जाती है। सर्व-संशय दूर हो जाता है। पाप-कर्म भस्म हो जाता है। मलिन संस्कारों का क्षय हो जाता है और तब जीवात्मा परमात्मा में लय अर्थात् 'मुक्त' हो जाता है।

योगदर्शन के पाद

योगदर्शन के चार पाद हैं—

१. समाधिपाद, २. साधनपाद, ३. विभूतिपाद, ४. कैवल्यपाद।

(१) समाधिपाद में सबीज और निर्बीज समाधि और उसके उपयोगी सार-विषयों का वर्णन है।

(२) साधनपाद में योग के साधनों का वर्णन है।

(३) **विभूतिपाद** में योग की विभूतियों का वर्णन है।

(४) **कैवल्यपाद** में मोक्ष का वर्णन है।

अब हम योगदर्शन के इन चारों पादों का सर्वसाधारण के कल्याण के लिए सरलार्थ प्रस्तुत करते हैं।

१—समाधिपादः (Samadhi-Pada)

अथ योगानुशासनम्। १।

अब योगशास्त्र आरम्भ किया जाता है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। २।

चित्तवृत्तियों को रोकना योग है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानद्। ३।

जब चित्त की वृत्तियाँ रुद्ध होती हैं तब जीव अपने रूप में स्थित रहता है।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र। ४।

अन्य समयों में चित्तवृत्तियों के समान रूप होता है।

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाः। ५।

वृत्तियाँ पांच हैं और उनके प्रत्येक के क्लिष्ट और अक्लिष्ट नामक दो-दो भेद हैं।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। ६।

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति, ये पाँच वृत्तियाँ हैं।

प्रत्यक्षानुमानाऽगमाः प्रमाणानि। ७।

प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम-भेद से प्रमाण तीन प्रकार का है।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमेतद्रूपप्रतिष्ठम्। ८।

वस्तु में अन्य वस्तु का जो मिथ्या ज्ञान होता है वह विपर्यय है।

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः। ९।

वस्तु के न रहते हुए भी शब्द-ज्ञान मात्र से उत्पन्न चित्तवृत्ति को विकल्प कहते हैं।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। १०।

अभाव-विषयक वृत्ति निद्रा कहलाती है।

अनुभूतविषयाऽसंप्रमोषः स्मृतिः। ११।

अनुभूत किया हुआ विषयों का अविस्मरण ही स्मृति है।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। १२।

अभ्यास और वैराग्य से चित्तवृत्तियों का निरोध होता है।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। १३।

उन (अभ्यास-वैराग्यों) में चित्तवृत्तियों को रोकने के लिए बार-बार यत्न करना अभ्यास है।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽसेवतो दृढभूमिः। १४।

उपर्युक्त अभ्यास दीर्घ काल तक निरन्तर श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करने से दृढ़ अवस्था वाला हो जाता है।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्। १५।

देखे हुए तथा सुने हुए विषयों में जिसको कोई तृष्णा नहीं है उसका वैराग्य वशीकार वैराग्य है।

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्। १६।

आत्मज्ञान होने से गुणों में तृष्णारहित होना परम वैराग्य है।

वितर्कविचारानन्दास्मिताऽनुगमात्सम्प्रज्ञातः। १७।

वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता के सम्बन्ध से सम्प्रज्ञात समाधि लग जाती है।

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः। १८।

परा वैराग्य के बार-बार अभ्यास करने से सब मानसिक क्रियाएँ शांत होकर केवल संस्कार शेष रह जाते हैं। वह असम्प्रज्ञात समाधि है।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्। १९।

विदेह और प्रकृति लयों का भव प्रत्यय होता है।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्। २०।

विदेह और प्रकृतिलयों से भिन्न योगियों को श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा आदि उपायों से असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

तीव्रसंवेगानामासन्नः। २१।

तीव्र वैराग्य से निरान्तर अभ्यास करनेवालों को समाधि-लाभ शीघ्र होता है।

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः । २२ ।

तीव्र संवेग के मृदु, मध्य और अधि मात्र से शीघ्रातिशीघ्र समाधि-लाभ होता है ।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा । २३ ।

अथवा अनन्य चित से भगवद्भक्ति करने से शीघ्र समाधि-लाभ होता है ।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । २४ ।

क्लेश, कर्म और कर्मफल-वासनाओं से अस्पृष्ट पुरुष ईश्वर है ।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् । २५ ।

पूर्वोक्त ईश्वर में नित्य सर्वज्ञ ज्ञान का बीज है ।

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदत् । २६ ।

अनादि होने से वह ईश्वर वेदप्रकाशक पूर्व-पुरुष ऋषियों के भी गुरु हैं ।

तस्य वाचकः प्रणवः । २७ ।

उसका निज नाम ओ३म् है ।

तज्जपस्तदर्थभावनम् । २८ ।

उस ओ३म् का जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना चाहिये ।

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावाश्च । २९ ।

उस ईश्वरप्रणिधान से आत्मसाक्षात्कार और विघ्नों का अभाव भी हो जाता है ।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थित्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया । ३० ।

व्याधि, स्त्यान (शरीर में भारीपन), संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति (विषयों में तृष्णा बने रहना), भ्रान्ति-दर्शन (मिथ्याज्ञान), अलब्धभूमिकत्व (समाधि की अप्राप्ति), अनवस्थत्व (समाधि में चित्त-की चंचलता) आदि चित्तविक्षेपकारक विघ्न हैं ।

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासाविक्षेपसहभुवः । ३१ ।

दुःख, दौर्मनस्य (मन का क्षोभ), अङ्गमेजयत्व (अङ्गों का काँपना), श्वास-प्रश्वास आदि विक्षेप के साथ होनेवाले विघ्न हैं ।

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः । ३२ ।

उपर्युक्त विघ्नों को हटाने के लिए एक तत्त्व (ईश्वर) का अभ्यास करें।

मैत्रीकरणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनात्तश्चित्तप्रसादनम् । ३३ ।

सुखी जनों से मित्रता, दुःखियों पर दया, पुण्यात्माओं में हर्ष और पापियों से उपेक्षा करने से चित्त प्रसन्न होता है।

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य । ३४ ।

अथवा उदरस्थ वायु के रेचक-कुम्भक से मन स्थिर होता है।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी । ३५ ।

अथवा गन्ध, रूप, रस, शब्द, स्पर्श आदि विषय-प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होकर मन की स्थिति को बाँधनेवाली होती हैं।

विशोका वा ज्योतिष्मती । ३६ ।

अथवा शोकरहित प्रकाशवाली प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन की स्थिति को बांधनेवाली होती है।

वीतरागविषयं वा चित्तस्य । ३७ ।

अथवा रागद्वेष-रहित महात्माओं के शुभ चरित का ध्यान करने से मन स्थिर होता है।

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा । ३८ ।

अथवा स्वप्न एवं सुषुप्त ज्ञान के आलम्बन करने से मन स्थिर होता है।

यथाभिमतध्यानाद्वा । ३९ ।

अभीष्ट विषय के ध्यान से भी मन स्थिर होता है।

परमाणुपरममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः । ४० ।

पूर्वोक्त उपायों से स्थित हुआ मन स्थूल से स्थूल और अत्यन्त सूक्ष्म सभी विषयों में स्थिर रहेगा।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येवमणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषुतत्स्थदंजनता समापत्तिः । ४१ ।

राजस, तामस वृत्तियों से रहित चित्त स्फटिक मणि के समान ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय आदि में ध्यान लगाने से तन्मय होकर तद्रूप हो जाना समापत्ति है।

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः । ४२ ।

उन समापत्तियों में से एक जिसमें शब्द, अर्थ और ज्ञानभिन्न पदार्थ अभिन्न ज्ञात हो वह सवितर्क समापत्ति है ।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्ये वार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का । ४३ ।

स्मृति के शुद्ध होने पर स्वरूप से रहित अर्थ मात्र को प्रकाश करनेवाली निर्वितर्का समापत्ति है ।

एतयैव सविचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता । ४४ ।

इसी सवितर्क निर्वितर्क समापत्ति के द्वारा सूक्ष्म विषयक सविचार और निर्विचार की व्याख्या की हुई समझनी चाहिए ।

सूक्ष्मविषयत्वं चालिंगपर्यवसानम् । ४५ ।

और सूक्ष्म विषयता अलिंग प्रकृति पर्यन्त है ।

ता एव सबीजः समाधिः । ४६ ।

उपर्युक्त चार समापत्तियाँ ही सबीज समाधि कहलाती हैं ।

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः । ४७ ।

निर्विचार समाधि में प्रवीण होने पर बुद्धिसत्त्व निर्मल होता है ।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा । ४८ ।

निर्विचार समाधि में प्रवीणता होने पर जो प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उसीको ऋतम्भरा (सत्य को धारण करनेवाली) प्रज्ञा कहते हैं ।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् । ४९ ।

विशेष विषयवाली होने से ऋतम्भरा प्रज्ञा आगम और अनुमान प्रज्ञाओं से भिन्न है ।

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी । ५० ।

ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारों के प्रतिबन्धक हैं ।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः । ५१ ।

उस ऋतम्भरा प्रज्ञोत्पन्न संस्कार के भी रुक जाने से, सब संस्कारों के रुक जाने पर निर्बीज समाधि होती है ।

॥ इति समाधिपादः ॥

२—साधनपादः

(Sadhana-Pada)

तपःस्वध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः । १ ।

तप, स्वाध्याय और ईश्वरार्पित बुद्धि से कार्य करना क्रियायोग है।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च । २ ।

क्रियायोग समाधि-भावना उत्पन्न करने और (अविद्यादि) क्लेशों को टालनेवाला है।

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः । ३ ।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पाँच क्लेश है।

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् । ४ ।

प्रसुप्त, शिथिल, दबे हुए और कार्यप्रवृत्त अविद्यादि क्लेशों की उत्पत्ति-भूमि अविद्या है।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या । ५ ।

अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और अनात्मा में आत्मभाव अविद्या है।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतैवास्मिता । ६ ।

दृष्ट-शक्ति आत्मा और दर्शन-शक्ति बुद्धि का एक-सा भान होना अस्मिता है।

सुखानुशयी रागः । ७ ।

सुख भोगने के पश्चात् (पुनः) सुख भोगने की इच्छा राग है।

दुःखानुशयी द्वेषः । ८ ।

दुःख भोगने के पश्चात् दुःख के कारण व कारक पर उत्पन्न क्रोध द्वेष है।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः । ९ ।

अज्ञानियों के समान ज्ञानियों में जो मृत्यु का भय विद्यमान है उसे अभिनिवेश क्लेश कहते हैं।

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः । १० ।

पूर्वोक्त पाँच क्लेश क्रियायोग से सूक्ष्म किये जाकर चित्त के

अपने कारण में लौटा देने से छोड़ने योग्य हैं।

ध्यानहेयास्तद् वृत्तयः । ११ ।

उन क्लेशों की स्थूल वृत्तियाँ ध्यान से त्यागने योग्य हैं।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः । १२ ।

वर्तमान और भावी जन्मों में भोगने योग्य कर्मों की वासनाओं का मूल क्लेश है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः । १३ ।

जब तक अविद्यादि क्लेशों की जड़ विद्यमान हो तब तक उसके फलस्वरूप जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् । १४ ।

वे जाति, आयु और भोग पुण्य-कर्मों से सुख और पाप-कर्मों से दुःख देनेवाले होते हैं।

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्व-विवेकिनः । १५ ।

विवेकी को परिणाम, ताप और संस्कारों में तथा सत्व-रज-तम भेद होने से गुणों में भी दुःख ही दुःख है।

हेयं दुःखमनागतम् । १६ ।

आनेवाला दुःख त्याज्य है।

द्रष्टदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः । १७ ।

द्रष्टा-दृश्य का संयोग दुःख का कारण है।

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् । १८ ।

प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव है, भूत और इन्द्रिय जिसका स्वरूप है, भोग और अपवर्ग जिसका प्रयोजन है, वह दृश्य है।

विशेषाऽविशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि । १९ ।

विशेष, अविशेष, लिंग मात्र और अलिंग, ये चार गुणों की अवस्थाएँ हैं।

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः । २० ।

द्रष्टा ज्ञानस्वरूप है और शुद्ध होते हुए भी चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखनेवाला है।

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा । २१ ।

उस द्रष्टा के लिए ही यह दृश्य का स्वरूप है ।

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् । २२ ।

सिद्ध पुरुष के लिए यह दृश्य नष्ट होता हुआ भी अन्य साधारणों के लिए नष्ट नहीं हुआ है ।

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः । २३ ।

स्वशक्ति दृश्य, स्वामि-शक्ति द्रष्टा के स्वरूप की प्राप्ति के लिए ही इन दोनों का संयोग हुआ ।

तस्य हेतुरविद्या । २४ ।

उस संयोग का कारण अविद्या है ।

तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् । २५ ।

अविद्या के अभाव में संयोग का अभाव होता है (जिसे हान कहते हैं); यह हान ही पुरुष का कैवल्य है ।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः । २६ ।

संशयरहित विवेक ज्ञान 'हान' का उपाय है ।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा । २७ ।

उस विवेक की सात प्रकार की सबसे ऊँची अवस्थावाली बुद्धि होती है ।

योगांगाऽनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः । २८ ।

योगांगों के अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय होकर विवेक-ख्याति-पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि । २९ ।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (ये) योग के आठ अंग हैं ।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः । ३० ।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पांच यम हैं ।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् । ३१ ।

पूर्वोक्त पांच यम किसी जाति, देश, काल और समय से न कटे जानेवाले सार्वभौम महाव्रत हैं ।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः । ३२ ।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् । ३३ ।

हिंसादि सताने पर अहिंसादि प्रतिपक्ष का चिन्तन करना चाहिए।

वितर्काहिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदु-मध्याधिमात्रा दुःखज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् । ३४ ।

हिंसादि वितर्क तीन प्रकार के हैं (१) स्वयं किए हुए, (२) अन्यों से कराये हुए, (३) अन्यों के किए हुए का समर्थन करना। उनके कारण लोभ, क्रोध, और मोह उत्पन्न होते हैं। वे तीन मृदु, मध्य, और अधिमात्रा के भेद वाले हैं। इन सबका फल अनन्त दुःख, अनन्त अज्ञान है। ऐसा प्रतिपक्ष की भावना करें।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । ३५ ।

साधना करके जिन्होंने अहिंसा की सिद्धि की है, उनके यहाँ सहज-विरोधी प्राणी भी वैर त्यागते हैं।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् । ३६ ।

सत्य का सम्यक् पालन किया हुआ व्यक्ति जो कहेगा वह होगा।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् । ३७ ।

अस्तेय (चोरी न करना) का भाव पूर्ण होने पर सब रत्नों की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः । ३८ ।

ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने से वीर्यलाभ होता है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः । ३९ ।

सब ओर से संग्रह करना छोड़ने पर साधक को अपने जन्म के सम्बन्ध में विचारने का ज्ञान होता है।

शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः । ४० ।

शुचिता से रहने का अभ्यास होने पर अपने अंगों से घृणा होती है, और अन्यों का स्पर्श असह्य होता है।

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च । ४१ ।

शुचिता से चित्त की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों

की जय और आत्मदर्शन की योग्यता होती है।

संतोषादनुत्तमसुखलाभः। ४२।

संतोष से उत्तमोत्तम सुख की प्राप्ति होती है।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः। ४३।

तप से अशुद्धि का क्षय होने से शरीर और इन्द्रियाँ वशवर्तिनी होती हैं।

स्वायायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः। ४४।

स्वाध्याय से इष्ट देव का साक्षात्कार होता है।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्। ४५।

अनासक्त भाव से ईश्वर की भक्ति करने से समाधि की सिद्धि होती है।

स्थिरसुखमासनम्। ४६।

जिसमें स्थिर और सुख से बैठ सके वह आसन है।

प्रयत्नशैल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्। ४७।

शरीर की चेष्टाओं को शिथिल करके पशु, पक्षी, सर्पादि के समान बैठने से आसन की सिद्धि होती है।

ततो द्वन्द्वानभिघातः। ४८।

आसन की सिद्धि होने से सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, शीत, आतप, क्षुधा, तृषा, हर्ष और विषाद आदि द्वन्द्व पीड़ा नहीं देते।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। ४९।

आसन की सिद्धि होने पर श्वास-प्रश्वासों की गति को रोकना प्राणायाम है।

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिपरिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। ५०।

बाह्या, आभ्यन्तर और स्तम्भ वृत्ति वाला प्राणायाम देश, काल और संख्या से लम्बा और हल्का होता है।

बाह्यान्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः। ५१।

श्वास के बाहर निकलने से, भीतर जाने से रोकनेवाला कुम्भक चतुर्थ प्राणायाम है।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। ५२।

उपर्युक्त चारों प्राणायामों की साधना से प्रकाश को ढकनेवाला

अज्ञान का आवरण टूट जाता है।

धारणासु च योग्यता मनसः। ५३।

प्राणायाम की सिद्धि से मन में धारणा करने की योग्यता होती है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। ५४।

जब इन्द्रियों का शब्दादि स्व विषयों से सम्बन्ध नहीं रहता, तब उनका चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार है।

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्। ५५।

प्रत्याहार से इन्द्रियाँ पूर्ण वशवर्तिनी होती हैं।

॥ इति साधनपादः ॥

३—विभूतिपादः
(Vibhuti-Pada)

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। १।

चित्त का किसी देश (स्थान) में—नासिकाग्रभाग, नाभि, हृदय-कमल, भृकुटि और ब्रह्मरन्ध्र अथवा सूर्य, चन्द्र, ध्रुवादिकों में ठहराना धारणा है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। २।

जिसमें चित्त को ठहराया है उसका ही ज्ञान-प्रवाह निरन्तर चले, वह ध्यान है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। ३।

चित्त जिसका ध्यान कर रहा हो, उसका स्वरूप शून्य होकर अर्थ-मात्र भासता हो, वह समाधि है।

त्रयमेकत्र संयमः। ४।

धारणा, ध्यान, समाधि, तीनों एक ही वस्तु में स्थित हों, वह संयम है।

तज्जयात्प्रज्ञाऽलोकः। ५।

उस संयम के जय से समाधि-प्रज्ञा का प्रकाश होता है।

तस्य भूमिषु विनियोगः। ६।

उस विजयी संयम को चित्त की स्थूल, सूक्ष्म सूक्ष्मेतर, और

सूक्ष्मतम सवितर्क संप्रज्ञात समाधि, निर्वितर्क समाधि आदि भूमियों में विनियोग करना चाहिए।

त्रयमन्तरंगं पूर्वेभ्यः । ७ ।

यम, नियम, आसनादि में धारणा, ध्यान, समाधि तीन सम्प्रज्ञात समाधि के अन्तरंग हैं।

तदपि बहिरंगं निर्बीजस्य । ८ ।

यह संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) भी निर्बीज (असम्प्रज्ञात) समाधि के लिए बहिरंग हैं।

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः । ९ ।

वयुत्थान (क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़) संस्कार का दवना और निरोध के संस्कारों का प्रकट होना—निरोध-काल में होनेवाले इन दोनों संस्कारों में अनुगत होना निरोध-परिणाम कहाता है।

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् । १० ।

निरोध संस्कार से चित्त की गति प्रशांत होती है।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः । ११ ।

चित्त की विक्षिप्तता नष्ट होकर एकाग्रता का उदय होना समाधि-परिणाम कहाता है।

ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ।१२।

तव फिर सभाहित चित्त की समान वृत्तियों का शान्त और उदय होना चित्त की एकाग्रता का परिणाम है।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः । १३ ।

चित्त के परिणाम से ही भूत और इन्द्रियों में धर्म, लक्षण और अवस्था-परिणाम किये हुए जानने चाहियें।

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी । १४ ।

अतीत, वर्तमान और भविष्यत् में धर्म अनुगत है, वह धर्मी है।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतु । १५ ।

परिणाम-भेद में क्रम-भेद कारण है।

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञातम् । १६ ।

पूर्वोक्त तीनों परिणामों में संयम करने से भूत-भविष्यत् का ज्ञान

होता है।

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् । १७ ।

शब्द, अर्थ और ज्ञान के परस्पर विभक्त न होने से अभेद प्रतीत होते हैं परन्तु उनके विभाग में संयम करने से पशु-पक्षी सरीसृपादि सब प्राणियों की बोली समझी जाती है।

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् । १८ ।

संस्कारों के साक्षात् करने से पूर्व-जन्म का ज्ञान हो जाता है।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् । १९ ।

अन्यों की चित्तवृत्ति के संयम करने से उनके चित्त का ज्ञान हो जाता है।

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् । २० ।

दूसरे का चित्त विषयसहित साक्षात् नहीं होता क्योंकि वह संयम का विषय नहीं है।

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशसम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् । २१ ।

शरीर के रूप में संयम करने से उसके रूप के रुकने से नेत्रों की ग्राह्य शक्ति रुक जाती है, तब योगी अन्तर्धान हो जाता है।

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा । २२ ।

सोपक्रम और निरुपक्रम [नामक कर्मों में संयम करने से अथवा अरिष्टों से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

मैत्र्यादिषु बलानि । २३ ।

मैत्री, करुणा, और मुदिता में संयम करने से योगी को अमोघ बल प्राप्त होता है।

बलेषु हस्तिबलादीनि । २४ ।

हाथी, सिंह, अश्व आदि के बलों में संयम करने से उनका बल योगी को प्राप्त होता है।

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् । २५ ।

प्रवृत्ति (हृदय-कमल) के प्रकाश में संयम करने से इन्द्रियातीत

व्यवधान एवं दूर रहनेवाली वस्तुओं का ज्ञान होता है।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् । २६ ।

सूर्य में संयम करने से भूःभुवःस्वः आदि लोकों का ज्ञान होता है।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् । २७ ।

चन्द्रमण्डल में संयम करने से ताराओं के व्यूह का ज्ञान हो जाता है।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् । २८ ।

ध्रुवतारा में संयम करने से प्रत्येक नक्षत्र की गति का ज्ञान हो जाता है।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् । २९ ।

नाभिचक्र में संयम करने से देह-रचना का ज्ञान होता है।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः । ३० ।

कण्ठ-कूप में संयम करने से क्षुधा और तृषा मिटती है।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् । ३१ ।

कूर्म-नाड़ी (कण्ठ-कूप के नीचे वक्षस्थल में कूर्माकार की नाड़ी) में संयम करने से स्थिरता होती है।

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् । ३२ ।

मूर्धा (कपाल) ज्योति में संयम करने से सिद्ध महात्माओं का दर्शन होता है।

प्रातिभाद्वा सर्वम् । ३३ ।

नैसर्गिक प्रतिभा से योगी सब-कुछ जान लेता है।

हृदये चित्तसंवित् । ३४ ।

हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान होता है।

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थान्यस्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् । ३५ ।

चित्त और पुरुष जो अत्यन्त भिन्न हैं, उन दोनों का समान ज्ञान प्रतीति-भोग है। उनमें परार्थ-प्रतीति से भिन्न स्वार्थ-प्रत्यय में संयम करने से आत्म-ज्ञान होता है।

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्त्ता जायन्ते । ३६ ।

तब (मन, श्रोतृ, त्वक्, रसना, नासिका, और चक्षु को क्रमशः)

प्रातिभ, श्रावण, वेदना, आदर्श आस्वाद, वार्ता आदि दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः। ३७।

वे छः सिद्धियाँ समाधि (आत्म-साक्षात्कार करने) में विघ्नकारी हैं। व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं।

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः। ३८।

चित्त के बंध के कारण शिथिल होने से और घूमने के मार्ग के जानने से अन्य शरीर में प्रवेश हो सकता है।

उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च। ३९।

उदान वायु के जीतने से जल, कीचड़, काँटे आदि से अलग रहता है और ऊर्ध्वगामी होकर स्वच्छन्द मरण को प्राप्त होता है।

समानजयाज्ज्वलनम्। ४०।

समान वायु के जीतने से योगी का शरीर अग्नि के समान चमकता है।

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम्। ४१।

श्रोत्र और आकाश तत्त्व के सम्बन्ध में संयम करने से योगी सूक्ष्म शब्द सुनने के योग्य होता है।

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम्। ४२।

शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से और हल्के रुई में समापत्ति करने से आकाश में गमन करता है।

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः। ४३।

शरीर से बाहर कल्पना न की हुई वृत्ति महाविदेहा है; उससे प्रकाश का आवरण नाश हो जाता है।

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद् भूतजयः। ४४।

पृथिव्यादि पंचमहाभूतों के स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म अन्वय और अर्थवत्व में संयम करने से उनपर योगी का जय होता है।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च। ४५।

उस भूत-जय से अणिमा आदि आठ सिद्धियों का प्रादुर्भाव और

काय-संपत् होती है तथा पाँच भूतों के धर्म से हानि नहीं होती।

रुपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् । ४६ ।

रूप, सुन्दरता, बल और वज्र के समान शरीर के अंगों की बनावट काय-संपत् कहलाती है।

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः । ४७ ।

ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व आदि चेन्द्रिपंयों के रूपों में संयम करने से इन्द्रियजय होता है।

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च । ४८ ।

इन्द्रियजय से मन की तरह शरीर वेगवाला होता है। इन्द्रियाँ शरीर के बिना सर्वत्र स्वतन्त्र विचरती हैं, और प्रकृति पर अधिकार होता है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च । ४९ ।

बुद्धि और पुरुष के भेद को जाननेवाला योगी सब भावों का अधिष्ठाता और सबको जाननेवाला होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् । ५० ।

उस विवेक-ख्याति में भी वैराग्य होने से दोषों के बीज का क्षय होकर कैवल्य-प्राप्ति होती है।

स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात् । ५१ ।

किसी आदरवाले स्थान से निमन्त्रण आने पर योगी उसमें आसक्त व अभिमानी न होवे अन्यथा कैवल्य-प्राप्ति में अनिष्ट होगा।

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् । ५२ ।

क्षण और उसके अविच्छिन्न क्रम में संयम करने से विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है।

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्योस्ततः प्रतिपत्तिः । ५३ ।

जिन दो तुल्य वस्तुओं का भेद जाति, लक्षण और देश से न होने पर विवेकज ज्ञान से होगा।

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् । ५४ ।

स्वयं प्रतिभा से उत्पन्न होनेवाला, सबको विषय करनेवाला, हर प्रकार से विषय करनेवाला और क्रमरहित ज्ञान को विवेकज ज्ञान

कहते हैं।

सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् । ५५ ।

बुद्धि और पुरुष की समान शुद्धि होने पर कैवल्य होता है।

॥ इति विभूतिपादः ॥

४—कैवल्यपादः

(Kaivalya-Pada)

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः । १ ।

जन्म, ओषधि, मन्त्र, तप और समाधि आदि सिद्धियाँ समाधि से उत्पन्न होती हैं।

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् । २ ।

प्रकृतियों के परिवर्तन से योगी के शरीर की जाति में अन्तर होता है।

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् । ३ ।

ये सिद्धियाँ प्रकृतिप्रेरक अर्थात् शरीर के विकाश के कारण नहीं हैं, परन्तु किसान जैसे क्यारी की मेंड़ तोड़कर उसमें जल भरने में सहायक होता है, वैसे ही रुकावटों को दूर करती हैं।

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् । ४ ।

अस्मिता (अहंतत्त्व) से निर्माण चित्त होते हैं।

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् । ५ ।

प्रवृत्ति के भेद में प्राप्त सूक्ष्म शरीर का चित्त सब निर्माण चित्तों का प्रेरक होता है।

तत्र ध्यानजमनाशयम् । ६ ।

पाँच निर्माण सिद्ध चित्तों में ध्यान से उत्पन्न चित्त वासना-रहित है।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् । ७ ।

योगी के कर्म न शुक्ल न कृष्ण अर्थात् पुण्य-पापरहित होते हैं। अन्यों के कर्म पाप, पुण्य और पाप-पुण्य भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् । ८ ।

उन तीन प्रकार के कर्मों से उनके फलानुसार वासनायें प्रकट

होती हैं।

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् । ९ ।

जाति, देश और काल का व्यवधान रहने पर भी स्मृति और संस्कारों का एक रूप होने के कारण वासनाओं में अन्तर नहीं होता।

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् । १० ।

अपनी भलाई चाहना सदा से है, अतः वासनायें भी अनादि काल से हैं।

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संग्रहीतत्वादेषामभावे तदभावः । ११ ।

वासनायें हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन से संग्रहीत होती हैं। इन चारों के अभाव होने से वासनायें भी अभाव (शान्त) होंगी।

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् । १२ ।

वासनायें काल से भेद होकर भूत-भविष्यत्-स्वरूप से रहती हैं।

ते व्यक्ताः सूक्ष्माः गुणात्मानः । १३ ।

वे महदादि प्रकट और सूक्ष्म गुण (सत्व, रज, तम) स्वरूप हैं।

परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्त्वम् । १४ ।

परिणाम के एक होने से वस्तु तत्त्व एक है।

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः । १५ ।

वस्तु में समता होने पर भी चित्त के भेद से वस्तु और चित्त का मार्ग भिन्न है।

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् । १६ ।

वस्तु किसी एक चित्त के आधीन नहीं हैं अन्यथा चित्त केअभाव में वह क्या होगी ?

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञानम् । १७ ।

वस्तु का उपराग (विषय का चित्त पर प्रतिबिम्ब पड़ने से) उसे वस्तु का ज्ञान होता है। उपराग न होने से ज्ञान भी नहीं होता।

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् । १८ ।

चित्त के स्वामी अपरिणामी होने से चित्तवृत्तियाँ सदा ज्ञात रहती हैं।

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् । १९ ।

चित्त दृश्य होने से स्वयं को प्रकाशित नहीं कर सकता।

एक समये चोभयानवधारणम्। २०।

एक समय में चित्त और विषय का ग्रहण नहीं हो सकता।

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसंगः स्मृतिसंकरश्च। २१।

एक चित्त को दूर का दृश्य मानने पर अनवस्था दोष आ जायगा और स्मृतियों का सङ्कर हो जायगा।

चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम्। २२।

अपरिणामी पुरुष को स्वप्रतिबिम्बित चित्ताकार से स्वचित्त का ज्ञान होता है।

द्रष्टृदृश्ययोपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्। २३।

द्रष्टा और दृश्य से रंगा हुआ चित्त सब आकारों वाला होता है।

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात्। २४।

असंख्य वासनाओं से चित्रित हुआ भी चित्त संहत्यकारी होने के कारण अन्य के लिए है।

विशेषदर्शिन आत्मभावभावना विनिवृत्तिः। २५।

विवेक ज्ञान से चित्त और आत्मा में भेद देखनेवाले योगी के आत्मभाव की भावना निवृत्त होती है।

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चितम्। २६।

तब विशेषदर्शी का चित्त विवेकमार्गी होकर कैवल्य के अभिमुख होता है।

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः। २७।

विवेक-ज्ञान के बीच-बीच में पूर्व-संस्कारों से व्युत्थान वृत्तियाँ उठती रहती हैं।

हानमेषां क्लेशवदुक्तम्। २८।

इन संस्कारों को क्लेशों के (हटाने के) समान हटाना चाहिये।

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथाविवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः। २९।

प्रसंख्यान के ज्ञान में भी विरक्त योगी को विवेकख्याति से धर्म-मेघ नामक समाधि प्राप्त होती है।

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः। ३०।

उस धर्ममेघ समाधि से क्लेश और कर्मों की निवृत्ति होती है।

तदासर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् । ३१ ।

तब सारे आवरण मलरहित होंगे और ज्ञान भी अनन्त होने से ज्ञेय थोथा होता है।

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् । ३२ ।

तब कृतार्थ हुए गुणों का परिणाम-क्रम (शरीरेन्द्रियों के कार्य करने में लगे रहना) समाप्त होगा।

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः । ३३ ।

प्रतिक्षण होनेवाले परिणामों के पश्चात् ग्रहण करने योग्य- ज्ञान को क्रम कहते हैं।

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति । ३४ ।

पुरुषार्थ-शून्य गुणों को अपने कारण में लीन कर लेना कैवल्य है। अथवा चिति शक्ति का अपने रूप में स्थित रहना कैवल्य है।

॥ इति कैवल्यपादः ॥

योगाभ्यासी की दिनचर्या

प्रातः ४ से ५ बजे—ब्राह्म मुहूर्त (उषा-काल) में उठना; प्रभ-स्मरण।

" ५ से ६—शौच, दन्तधावन, स्नान आदि

" ६ से ७—आसन, प्राणायाम, संध्या।

" ७ से ८—हवन, स्वाध्याय, प्रातराश।

" ८ से ९—पारिवारिक कार्य।

" ९ से १०—भोजन।

" १० से ५—अपना व्यावसायिक कार्य।

सायंकाल ५ से ६—पारिवारिक कार्य।

" ६ से ७—शौच, आसन, संध्या-हवन।

" ७ से ८—भ्रमण, स्वाध्याय।

" ८ से ९—भोजन।

सायं ९ से १०—संगीत, व्याख्यान, सत्संग, स्वाध्याय आदि इच्छानुसार परोपकार के सामाजिक कार्य। दिनभर के अच्छे-बुरे कार्यों का चिन्तन करें।

उसके पश्चात् तमाम विचारों, चिन्ताओं को अपने दिमाग़ से निकालकर, निश्चिन्त होकर, प्रभु का स्मरण करके आराम करें।

स्वर्णमयी सुन्दर सौ बातें

१. मुख एक और दाँत बत्तीस हैं; इसलिए भोजन के ग्रास को बत्तीस बार चबाओ—यह प्रभु का सुन्दर स्वास्थ्य के लिए आवश्यक संकेत है।

२. प्राण जीवन है। जीवन पाना है तो प्राणायाम करो। श्वास मुख से नहीं नाक से लो, आयु बढ़ेगी।

३. पेशाब, शौच, उल्टी, खाँसी, छींक आदि के वेग को मत रोको। इन वेगों को रोकना बीमारी को निमंत्रण देना है।

४. क्रोध, शोक आदि मानसिक व्याकुलता से शरीर का पतन होता है। इन बातों को अपने पास मत फटकने दो।

५ सरसों आदि के तेल की नित्य पाँव-तले मालिश करने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

६. सर्दी में प्रातः की धूप तथा गर्मी में प्रातः की वायु का सेवन करने से आयु बढ़ती है।

७. अधिक खाना रोगों को निमंत्रण देना है।

८. मांस, अण्डे, शराब आदि गर्म और नशीले पदार्थों के उपयोग से हृदय कमज़ोर बनता है।

९. अति गर्म और ठंडे पदार्थ शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं।

१०. वीर्य के नाश से जीवन का ही नाश हो जाता है।

११. अपनी शक्ति से अधिक काम करना स्वयं का नाश करना है।

१२. दिन में सिर्फ़ दो बार भोजन करनेवालों की आयु बढ़ती है और वे कभी बीमार नहीं पड़ते।

१३. सोने से पूर्व मानसिक चिन्ताओं, क्रोध, रागद्वेष को अपने दिमाग़ से बाहर निकाल दें, अनेक बीमारियों से बचोगे।

१४. सोने से पूर्व पैरों को गर्म जल से धोकर उसे साफ़ कर लिया करें, नींद अच्छी आएगी।

१५. प्रातः-सायं लम्बी सैर करना, बग़ीचे का कार्य करना स्वास्थ्य के लिए श्रेष्ठ औषधि है।

१६. सप्ताह में एक दिन उपवास रखने से पेट की बीमारियाँ नहीं होतीं।

१७. दक्षिण की ओर पैर करके सोने से हृदय तथा मस्तिष्क की बीमारियाँ पैदा होती हैं।

१८. पेशाब करके सोने से स्वप्न-अवस्था में होनेवाले दोष नहीं होते।

१९. रात्रि को दूध पीकर सोने से नींद अच्छी आती है और प्रातः शौच साफ़ आता है।

२०. सम्भोग के पश्चात् ठंडा पानी आदि पीने से अपने-आपको, तथा पैदा होनेवाली सन्तान को अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं। उस अवस्था में दूध का उपयोग अमृत का काम करता है।

२१. जुराब पहनकर सोने से आँखों और मस्तिष्क को विकार पैदा होता है।

२२. अधिक सोने से आयु घटती है।

२३. बीमारी की अवस्था में विषय-भोग करना मृत्यु को निमंत्रण के समान समझें।

२४. बच्चे को दूध पिलाकर तुरन्त सुला देने से पाचनशक्ति घटती है।

२५. गर्म जल से गुदा को धोने से बवासीर हो जाती है।

२६. खड़े होकर पेशाब करने से मधुमेह की बीमारी हो जाती है और बैठकर पेशाब करने से उसमें आराम होता है।

२७. मुर्ग़ी की विष्ठा का, कुत्ते के काटे हुए स्थान पर लेप करने से आराम हो जाता है।

२८. प्याज़ और मिर्च को बारीक पीसकर, साँप के काटे गये स्थान

पर लगाने से विष का प्रकोप कम होकर रोगी ठीक हो जाता है।

२९. बवासीर में भाँग का धुआँ, अनार अथवा मूली के रस में देसी शक्कर डालकर प्रातः ४० दिन देने से ठीक हो जाता है। सूरन का भुर्ता भी लाभदायक है।

३०. गेंदे की पत्ती पीसकर सिर पर लगाने से सिर-दर्द दूर हो जाता है।

३१. मुँह से खून आने पर, अनार की पत्तियाँ पीसकर पीने से खून आना बन्द हो जाता है।

३२. लू के दिनों में अपने पास प्याज़ रखें लू का असर नहीं होगा।

३३. मृगी में अशोक-रस में समुद्र-फेन घिसकर पिलाने से लाभ होता है।

३४. नींद के लिए सरसों अथवा बादाम के तेल की सिर पर मालिश करें।

३५. गले के दर्द में तुलसी का रस शहद में डालकर दें।

३६. दाँतों की तमाम खराबियों पर सँभालू का दातुन करें।

३७. कान में आवाज़ होने की शिकायत हो तो ब्रांडी में अफ़ीम मिलाकर दो-तीन बूँदें कान में डालें।

३८. भगन्दर में—गर्म जल के सेंक से पस को पूर्णरूप से निकालकर, ताज़े नीम के पेड़ की सली से, मुर्ग़ी के अण्डे की पीली ज़र्दी में नमक मिलाकर साधारण पानी में घिसें। उसके पश्चात् नीम की सली से डालें।

३९. पथरी होने पर—मूली के रस में मिश्री मिलाकर दें।

४०. गला बैठने पर—बताशे की चाशनी में काली मिर्च दें।

४१. पेट में कीड़े होने पर—वायविडंग का चूर्ण खिलावें।

४२. मकड़ी के ज़हर पर—पानी में अमचूर पीसकर लगावें।

४३. खून के दस्त होने पर—दूध में बेल का गूदा मिलाकर पिलावें।

४४. बादी बवासीर पर—मट्ठे में सेंधा नमक डालकर पिलावें।

४५. मलेरिया में—गो-मूत्र में सेंधा नमक मिलाकर पाँव के तलवों की मालिश करें।

४६. सर्दी के ज्वर में—कई वर्ष पुराने घी में हींग मिलाकर सुंघावें अथवा दही में देशी शक्कर डालकर प्रातः दें।

४७. जिगर बढ़ने पर—गो-मूत्र कुछ गरम करके, जिगर के स्थान पर सेंक करें।

४८. तिल्ली बढ़ने पर—दो अंजीर रात्रि को जामुन के सिरके में भिगोकर रखें। प्रातः खूब चबाकर खावें।

४९. अंडकोष-वृद्धि पर—उड़द के चून की रोटी बाँधें।

५०. पेशाब न आने पर—गुदा और गुप्तांग के मध्य-भाग का सेक करें।

५१. थूक में खून आने पर—प्रातः-सायं तीन तोला गुलकन्द खावें।

५२. बलग़म निकालने के लिए—इसबगोल में मिश्री मिलाकर दें। ऊपर से गर्म दूध पिलावें।

५३. चेचक में—अडूसे का रस शहद में मिलाकर दें।

५४. खाँसी में—शहद में अदरक का रस, पान का रस तथा काली मिर्च तीन-तीन माशे डालकर दिन में दो बार दें।

५५. शक्ति बढ़ाने के लिए—बड़ के पेड़ का दूध ३-४ बूँदें बताशे में डालकर नित्य प्रातः लें।

५६. श्वास-कष्ट में—गाय के घी में सेंधा नमक मिलाकर छाती की मालिश करें।

५७. हिचकी में—नारियल की गिरी और मिश्री को खूब चबावें। गो-मूत्र सूँघने से आराम होता है।

५८. प्रमेह में— कच्चे गूलर खावें। सूखा गूलर और मिश्री समभाग पीसकर ताज़े जल से लें।

५९. स्वप्नदोष में—रात्रि को कम खावें। विचार पवित्र रखें। पेट के बल तथा सीधा न सोवें। नित्य रात्रि में मूत्रेन्द्रिय को ताज़े जल से साफ़ करें।

६०. शीघ्रपतन रोकने के लिए—छुहारों की खीर खावें।

६१. बहुमूत्र में—बबूल का गोंद घी में भूनकर प्रातः-सायं मक्खन में डालकर लें।

६२. प्रदर में—प्रातः-सायं पके केले खाकर दूध पीवें।

६३. गठिया में—लहसुन का उपयोग और उसके तेल की मालिश करें।

६४. सर्प के काटने पर—तम्बाकू के पत्तों को पानी में पीसकर लगावें। ऊपर से तांबे का सिक्का बाँधें।

६५. बिच्छू के काटने पर—गाय के घी में सोंठ मिलाकर खिलावें।

६६. कीट-पतंग आदि के काटने पर—नौशादर और चूना पीसकर लगावें।

६७. कुत्ते के काटने पर—सरसों के तेल में काली मिर्च पीसकर लगावें।

६८. पित्त-विकार में—करेले की पत्ती का रस दें।

६९. कान बहने पर—कान में सिरका डालें।

७०. शराब का नशा उतारने के लिए—ककड़ी का बीज खिलावें।

७१. भाँग का नशा उतारने के लिए—नींबू का अचार खिलावें।

७२. अफ़ीम का नशा उतारने के लिए—भुनी हुई हींग तथा काला नमक मट्ठे में डालकर दें।

७३. गाँजे का नशा उतारने के लिए—पोदीना का रस पिलावें।

७४. धतूरे का नशा उतारने के लिए—मक्खन और मिश्री मिलाकर खिलावें।

७५. दाँतों के रोगों में—चमेली के पत्ते चबावें।

७६. आँखों के कष्ट में—गेंदे के पत्ते पीसकर उन्हें आँखें बन्द करके बाँधें।

७७. कान के दर्द में—सरसों के तेल में लहसुन जलाकर, उस तेल की २-३ बूँदें कान में डालें।

७८. रक्त-विकार में—नीम के पत्तों के रस का प्रातः सेवन करें।

७९. भोजन शीघ्र हज़म हो—इसके लिए बाईं करवट सोवें।

८०. आँखों की ज्योति के लिए—प्रातः हरी घास पर नंगे पाँव चलना चाहिए। इससे आयु भी बढ़ती है।

८१. जी मिचलाने पर—गर्म दूध अथवा पानी पी लेना चाहिए।

८२. हाथ-पैर फटने पर—मेंहदी लगावें।

८३. हृदय को बलवान् बनाने के लिए—गधी के दूध का सेवन करना

चाहिए।

८४. वीर्य बढ़ाने के लिए—गाय के गर्म दूध में गाय के घी को डालकर सेवन करें।

८५. शक्ति बढ़ाने के लिए—गाय के दूध में बादाम डालकर सेवन करें।

८६. खुजली में—नीम के पत्तों का रस, हल्दी और गो-मूत्र का लेप करें।

८७. चोट से खून निकलने पर—तुरन्त अपना पेशाब लगावें।

८८. फोड़े की सूजन कम करने के लिए— हल्दी और चावल पीसकर लेप करें।

८९. आग से जलने पर—नारियल का तेल लगावें। शहद में घी मिलाकर लगावें। मक्खन में कपूर मिलाकर लगावें।

९०. सूखी उल्टी में—अनार के रस में मिश्री मिलाकर दें।

९१. ज्वर, उल्टी और दस्तों में—प्याज़, पोदीना, मूली, अदरक का रस एक-एक तोला निकालकर दें।

९२. नींद लाने के लिए—रात्रि को गर्म दूध में प्याज़ का एक तोला रस डालकर लें। रात्रि को सरसों का तेल कान में डालने से भी नींद आती है। सोते समय चिन्ताओं की छुट्टी कर दें।

९३. मुँह के छालों पर—पीपल और पान के पत्तों का रस लगावें।

९४. मोटापा घटाने के लिए—प्रातः मूली को शहद में मिलाकर खावें।

९५. वायु-गैस-निवारण के लिए—मट्ठे में ३ माशा अजवाइन तथा १ माशा काला नमक डालकर सेवन करें।

९६. खाना खाकर तुरन्त सोना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है।

९७. रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने पर लिंग और योनि में विकार पैदा होते हैं और सन्तान शैतान पैदा होती है।

९८. शरीर-विकास के लिए—तंग कपड़े पहनना छोड़ दें।

९९. सुन्दर स्वास्थ्य के लिए—नित्य योग का अभ्यास आवश्यक है।

१००. योग और भोग, दोनों साथ-साथ करना ऐसा है जैसे छिद्रवाले पात्र में पानी भरने की मूर्खता करना।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों के मेल से बना है, जिसका सरल अर्थ 'वीर्य-रक्षा' करना है। 'ब्रह्म' का अर्थ 'वीर्य' तथा 'चर्य' शब्द का अर्थ 'रक्षा' करना है। इस प्रकार सम्पूर्ण 'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ 'वीर्य-रक्षा' करना है।

यह तो हम लोगों को पूर्णतया मालूम है कि जो कुछ हम खाते हैं उससे रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र, ये सात धातुएँ तैयार होती हैं। इन्हीं सातों धातुओं से हमारे शरीर की स्थिति क़ायम है। इनमें 'शुक्र' (वीर्य) प्रधान है। इसके विषय में हमारे प्राचीनकाल के विद्वानों ने भी खूब लिखा है। चरक के निदान स्थान के छठे अध्याय में लिखा है—

आहारस्य पर धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छति॥

अर्थात्—वीर्य ही, मनुष्य के द्वारा खाये-पिये पदार्थों का अन्तिम परिणाम है। वीर्य के क्षय से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और मृत्यु तक हो जाती है। इसलिए वीर्य-रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है।

बालावस्था से ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने का सबसे सरल तथा अनूठा उपाय 'उच्चकोटि की शिक्षा' तथा 'अच्छी संगति' है। बचपन ही से आवारा तथा गुण्डों के साथ टहलना-फिरना एवं किसी प्रकार का लेशमात्र भी सम्पर्क नहीं रहना चाहिए। बाल-विवाह नहीं होना चाहिए। भोजन में भी परहेज़ रखना चाहिये। प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि उस काल में ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करते समय केवल 'फल' ही विद्यार्थियों का भोजन होता था जिससे शुक्र (वीर्य) में गर्मी नहीं आती थी। वीर्य-रक्षा तथा ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करने का सबसे बड़ा साधन 'सात्विक भोजन' है। आजकल राजसी तथा तामसी भोजन ५ वर्ष की अवस्था से शुरू हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि अपनी इन्द्रियाँ अपने अधिकार में नहीं रहतीं।

ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की महिमा संसार के सब महान् ग्रन्थों

और व्यक्तियों ने गाई है। चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, दूसरा अध्याय, पाद ४, श्लोक ४६-४७ में लिखा है—

रस इक्षौ यथा दध्नि सर्पिस्तैलं तिले यथा।
सर्वत्रानुगतं देहे शुक्रं संस्पर्शनं तथा ॥
तत् स्त्रीपुरुषसंयोगे चेष्टासंकल्पपीडनात् ।
शुक्रं प्रच्यवते स्थानाज्जलमार्द्रात् पटादिव ॥

अर्थात्—जिस प्रकार ईख में रस, दही में घी, और तिल में तेल है, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर में वीर्य है। जिस भाँति भीगे कपड़े से निचोड़ने पर पानी गिरता है, उसी भाँति स्त्री-पुरुष के संयोग, चेष्टा, संकल्प, पीड़न से वीर्य अपने स्थानों से गिरता है।

वीर्य-रक्षा ही के प्रताप से अर्जुन और भीम धनुर्धारियों तथा गदाधारियों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। भीष्म पितामह ने ब्रह्मचर्य के बल से असम्भव कार्यों को सम्भव बना दिया। ब्रह्मचर्य के तेज से बालब्रह्मचारी महावीर हनुमान ने लंका में धूम मचाई। अकेले दयानन्द ने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करके, वेद-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके संसार को ललकारा और सत्य का सूर्य चमकाया। वीर्य के बल से लक्ष्मण भी रावण के पुत्र मेघनाद को काल के गाल में पहुँचाने में समर्थ हुए।

व्यायाम

संसार में प्राणिमात्र के लिए आरोग्यता ईश्वरदत्त अमूल्य निधि है। जो इसकी रक्षा ध्यानपूर्वक और सावधानी से करते हैं, वे ही संसार में सुख पाते हैं। व्यवहार में जैसे आय-व्यय विचार करके चलनेवाले का दिवाला निकलने का समय नहीं आता, आरोग्यता के सम्बन्ध में भी वैसा ही है। जो ध्यानपूर्वक सृष्टि के नियमानुसार न चलकर, शरीर की रक्षा नहीं करते, उन्हें शीघ्र ही स्वास्थ्य से हाथ धो विकराल काल के मुँह का ग्रास बनना पड़ता है।

प्रायः तीन ही कारणों से हम अपनी शारीरिक शक्ति गँवा बैठते हैं—(१) शारीरिक व्याधियाँ, (२) व्याधियों से रक्षा न करके असावधानी वर्तना, (३) परिश्रम के प्रति घृणा करना।

भारत में अकाल मृत्यु की बढ़ती हुई संख्या के कारणों की खोज करने पर भी यही ज्ञात हुआ है कि "लोग शारीरिक श्रम के न करने से ही असमय में मरते हैं।" वेद में इसीलिये परिश्रम की महिमा गाई गई है—

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवाः। (ऋग्वेद)

अर्थात्—"यह सत्य ही है कि देवता उसकी सहायता करते हैं, जो परिश्रम करता है।"

समाज में अर्थजीवी लोग भी होते हैं और वे हृष्ट-पुष्ट तथा स्वभावतः स्वस्थ भी होते हैं। परन्तु उनका निर्वाह अति सुखमय होने से वे अपनी जीवन-शक्ति का यथार्थ उपयोग नहीं कर सकते। शरीर को मजबूत और स्वस्थ रखने के लिए हमें शरीर के अंगों के सब विभागों की मांस-पेशियों को दृढ़ करने की ज़रूरत है।

मनुष्य लूला या लंगड़ा हो जाने से संसार में जी सकता है, परन्तु पेट की आँतों या हृदयरहित हो जाने से जी नहीं सकता। हमारे शरीर के गौण अंग भी ऐसे ही महत्त्व के हैं। कई लोग अवकाश के अभाव का बहाना करते हैं। सत्य यह है कि हम शारीरिक बल को महत्त्व ही नहीं देते।

विलियम टॉड ने ठीक ही कहा है—"यदि तुम्हें सुखी होना हो तो जहाँ खड़े हो वहीं से सचेत होकर काम में लग जाओ, उत्तम मुहूर्त्त की बाट मत देखो, क्योंकि वह दूर है और भविष्य के गर्भ में छिपा हुआ है।"

भोजन

"भूख के बिना गुलकन्द भी खाओगे तो नुक़सान करेगा; भूख के वक्त सूखी रोटी भी खाओगे तो वह गुलकन्द का मजा देगी।"

यह शब्द प्रसिद्ध तत्त्ववेता शैख सादी के हैं। हमारे राष्ट्र के लोग इन शब्दों पर ध्यान देकर चलें तो न सिर्फ राष्ट्र की अन्न-समस्या ही हल हो जाए, साथ-साथ राष्ट्र के लोग सुखी तथा स्वस्थ भी बन जाएँ एवं उनकी आयु में भी वृद्धि हो।

हम सब जानते हैं कि अन्न से ही शरीर का पोषण होता है और

इसी से हमारी सारी शक्तियाँ काम करती हैं। परन्तु हम देखते हैं कि वर्तमान मशीनी युग ने मनुष्य-जीवन को कृत्रिमता के कारागार में कैद कर रखा है। आज से ३०-४० वर्ष पहले जीवन-निर्वाह के लिए लोगों को नाना प्रकार के श्रम करने पड़ते थे और उनको खुराक भी सादा और नैसर्गिक स्थिति में मिलती थी। फल यह होता था कि मनुष्य-जीवन नीरोग और शान्तिमय व्यतीत होता था। शरीर को श्रम के परिमाण में आहार की आवश्यकता रहती है। वर्तमान में शारीरिक श्रम का परिमाण घटता जा रहा है और इसीलिए आहार का परिमाण भी घटना आवश्यक है। कई लोग मानते हैं कि अधिक आहार करने से शक्ति बढ़ती है। परन्तु वे जानते नहीं हैं कि "थोड़ा खाया उसने बहुत खाया, बहुत खाया उसने कुछ नहीं खाया" वाली कहावत का मर्म क्या है। कहा भी है कि—

"थोड़ा खाना—सुख पाना"

आवश्यकता से अधिक आहार करने से हानि होती है और शरीर नाना प्रकार के रोगों का आश्रयस्थल बन जाता है। इसलिये हरएक मनुष्य को चाहिए कि वह आवश्यकता और श्रम का विचार कर अपने आहार का परिमाण अनुभव से निश्चित करे। आवश्यकता से कम भोजन करने में उतना नुकसान नहीं है; हानि तो अधिक खाने से ही होती है। कई बीमार व्यक्ति रुचि के न होते हुए अर्थात् स्वाभाविक भूख के अभाव में भी अशक्त हो जाने की आशंका से खा लेते हैं और कभी-कभी कई डॉक्टर भी बीमारों की मिथ्या मान्यताओं और कल्पनाओं के चक्कर में आ उन्हें भोजन करने की सलाह दे देते हैं।

स्वाभाविक रुचि या भूख के अभाव में उपवास करना ही उत्तम है। विधाता ने शरीर का विधान ऐसी चतुराई से किया है कि आवश्यकता होने पर ही उसे अन्न के लिए रुचि होती है। उस समय यदि उसे सादा ही भोजन क्यों न मिले, वह उसे प्रेम से खाता है। लोग प्रकृति के आदेशों का उल्लंघन कर मसालेदार और चटपटे आहार के पीछे आँखें मूंदकर लगे हुए हैं। परन्तु प्रकृति अपने अविचल सिद्धान्त के अनुसार किसी को कब क्षमा कर सकती है! अतः उनका शरीर नाना

प्रकार के विकारों का घर ही बनने लगता है, जिससे अन्त समय तक छुटकारा पाना मुश्किल हो जाता है। दीर्घायु पाने तथा सुखी बनने की कामना प्रकृति के नियमों का अनुकरण करने से सिद्ध हो सकती है। मिताहारी बनने से शारीरिक और मानसिक कार्य प्रेम, उत्साह और आनन्द के साथ सरलता से होते हैं।

अज्ञानतावश कई लोग मान बैठे हैं कि हम खाने के लिए जीते हैं। यह भारी भूल है। ऐसा समझनेवाले लोगों से कोई महान् कार्य नहीं हो सकता और न वे महान् बन ही सकते हैं। तभी हम स्वस्थ, सुखी तथा महान् बन सकेंगे जब हम जीने के लिए खाना आवश्यक समझ मिताहारी बनकर चलेंगे। हमारे धर्मशास्त्रों ने 'व्रत' और 'उपवासों' की विविध महिमा गाई है। ८० प्रतिशत रोग 'उपवास' से ठीक हो जाते हैं। अधिक रोग हाज़मे की खराबी से ही होते हैं। आजकल लोग 'उपवास' के मर्म को समझे बिना पेट भरकर फलाहार करते हैं। ऐसे उपवासों से कोई लाभ नहीं होता।

लोग कहते हैं—हमें भोजन समय पर करना ही चाहिए, इसलिये करते हैं; परन्तु उस समय सोचते नहीं हैं कि भूख लगी है या नहीं। भूख लगने पर ही हमें खाना चाहिए। सप्ताह में कम-से-कम एक बार भोजन न करना लाभदायक है। प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों का भी कथन है कि "मिताहारी ही दीर्घायु तथा सुखी होता है।" अतः

"खाने के लिये मत जिओ, जीने के लिये खाओ !"

मालिश

सुस्पर्शोपचिताङ्गश्च बलवान् प्रियदर्शनः।
भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वान्नरोऽल्पजर एव च॥

(चरक)

अर्थात्—नित्यप्रति अभ्यंग (शरीर पर तेल-मर्दन करने) से मनुष्य की त्वचा कोमल, उत्तम स्पर्श-ज्ञानवाली, तथा पुरुष भरे हुए सुगंठित अंगोंवाला, बलवान् एवं सुन्दर शरीरवाला हो जाता है। ऐसे मनुष्य को बुढ़ापा भी जल्दी नहीं आता।

मालिश-चिकित्सा-पद्धति भारत की प्राचीन देन है। इसका

आयुर्वेद-ग्रन्थों में भी विस्तार से उल्लेख मिलता है। पहले माता बच्चे के जन्म लेने के पश्चात् सरसों आदि के तेल से उसकी नित्य मालिश करती थी। इससे बच्चे का शरीर जहाँ सुन्दर बनता था, वहाँ सुदृढ़ और नीरोग बन जाता था। आयु लम्बी होती थी। शरीर के सब अंगों में स्फूर्ति रहती थी। काम करने में आनन्द आता था। जब से यह परम्परा परिवारों में से नष्ट होने लगी है, तब से रोगों ने परिवारों में प्रवेश पा लिया है।

मालिश के अनेक प्रकार हैं—तेल से, पानी से, पाउडर से, टवाल या किसी कपड़े से, सूर्य की किरणों से, सिर्फ हाथों से सूखी मालिश, आदि। मालिश से अनेक बीमारियाँ दूर होती हैं। यह एक वैज्ञानिक पद्धति है।

मालिश से गठिया, कब्ज़, मोच, सिर के दर्द, हिस्टीरिया, रक्त-विकार, पेट की चर्बी, वायु, हृदय-रोग, आँखों की बीमारी, बालों के रोग, मधुमेह, हाई (उच्च) और लो (निम्न) ब्लड-प्रेशर, शरीर की कमज़ोरी और थकावट दूर की जा सकती हैं।

हर सामान्य व्यक्ति को सप्ताह में कम-से-कम एक बार मालिश अवश्य करनी अथवा करानी चाहिए। मालिश करवानेवाले की अपेक्षा करनेवाले को अधिक लाभ पहुँचता है।

योग-आसनों को नित्य करनेवाले स्त्री-पुरुष यदि नित्य मालिश करके योग-आसन करें, तो उनका शरीर सत्यं-शिवं-सुंदरम् की साकार मूर्ति बन जाए।

दाँत

ओ३म् तनूस्तन्वा मे सहे, दन्तः सर्वमायुरशीय स्योनं
ये सीद पुरूः पणस्व पृवमानः स्वर्गे।

(अथर्व० का० १९, स० ६१, मं० १)

अर्थात् "हे सर्वशक्तिमान् परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं अपने शरीर द्वारा मनुष्यों के शरीरों को जीत सकूँ। सम्पूर्ण जीवनपर्यन्त दाँतों से भोजन कर सकूँ, बनावटी पत्थर के दाँत कभी लगवाने न पड़ें। स्वाभाविक जो अपने दाँत हैं, वही आजन्म मज़बूत रहें।"

चेहरे की सुन्दरता के लिए, सुन्दर आँखों और सुन्दर दाँतों का

होना आवश्यक है। दाँतों के अभाव में आँखों तथा चेहरे की सुन्दरता तो नष्ट हो ही जाती है, साथ-साथ पाचनशक्ति पर भी उसका बुरा असर पड़ता है। परिणामस्वरूप सारे शरीर का ढाँचा डगमगा जाता है।

जल्दबाज़ी के चक्कर में पड़ा आजकल का मनुष्य दाँतों का कार्य पेट से लेने लगा है अर्थात् जिस खाए हुए पदार्थ को उसे पर्याप्त मात्रा में दाँतों से चबाना चाहिए, उसे वे मुँह में डालते ही पेट में निगल जाते हैं। पेट की आँतें खाए गये पदार्थ को पीसने का कार्य कर नहीं सकतीं। परिणाम यह निकलता है—खाया गया पदार्थ पूर्णरूप से न पचकर अनावश्यक पदार्थ गुदा से बाहर निकालने में असमर्थ बन जाता है। बदहज़मी पैदा हो जाती है। कुछ पदार्थ आँतों के साथ तह बनकर रह जाता है। उसमें सड़न पैदा होने लगती है, जिससे गैस पैदा हो जाती है। वह गैस अनेक प्रकार के रोग पैदा करके मनुष्य का जीवन नरकमय बना देती है।

वर्तमान काल में प्रायः ८० प्रतिशत लोग इस अवस्था के नज़र आते हैं। उन्होंने पेट को 'कचरा पेटी' समझकर उसमें बेमौके, बेमतलब के पदार्थ, बिना सोचे-समझे ठूसने शुरू कर रखे हैं।

परमात्मा के बनाए इस सुन्दर शरीर के हर अंग का अपना महत्त्व है। जिसका जो कार्य है, उससे हमें वही कार्य लेना चाहिए, अन्यथा दुःख पाएँगे। हर अंग की रचना में उसका आवश्यक संकेत है। जैसे—मुख एक है, परन्तु दाँत बत्तीस बनाए। ऊपर और नीचे के दो ढाँचे बनाए जा सकते थे। ऐसा न करके ३२ दाँत ही क्यों परमात्मा ने बनाए ? हमारा मत है कि परमात्मा का हर व्यक्ति को यह संकेत है कि एक ग्रास को क़म-से-कम ३२ बार चबाकर उसके पश्चात् खाए गए पदार्थ को रबड़ी-जैसा बनाकर, पेट की तरफ़ भेजो। ऐसा करने से जहाँ खाना ठीक ढंग से पचेगा, वहाँ दाँत मज़बूत बनेंगे। आँखों की ज्योति बढ़ेगी। दिमाग़ शक्तिशाली बनेगा। पेट साफ़ रहेगा। शरीर नीरोग और स्वस्थ रहेगा।

दाँतों को मज़बूत और सुन्दर बनाएं रखने के लिए उनको नित्य साफ़ रखना परमावश्यक है। दाँतों को 'बबूल' अथवा 'नीम' की दातुन

को मुलायम बनाकर उससे सावधानीपूर्वक आगे और पीछे के हिस्से को साफ़ करना चाहिए। सप्ताह में एक-दो बार टूथपेस्ट से भी साफ़ किया जा सकता है। जिस दिन टूथपेस्ट से दाँत साफ़ करें, उस दिन सरसों अथवा तिल के तेल से उसकी मालिश अवश्य कर लिया करें, अन्यथा मसूड़े कमज़ोर हो जाने पर शीघ्र टूट जाने का भय रहता है। रोज़ टूथपेस्ट करना हानिकारक है। अधिक बोलते रहने से दाँत जल्दी टूटते हैं।

दाँतों की तकलीफ़ होने पर उसका उचित समय पर इलाज कराना आवश्यक है। दूध, घी, गाजर, मूली, पालक आदि के सेवन से दाँत मजबूत बनते हैं। अति गर्म, अति ठंडे, अति खट्टे, चटपटे और मिठाइयों के उपयोग से दाँत कमज़ोर और रोगी बन जाते हैं। ऐसे पदार्थों का उपयोग कम करें।

आँखें

पश्येम शरदः शतम्।

वेद की इस सूक्ति में सौ साल नीरोग आँखों से देखने की बात कही गई है।

वर्त्तमान काल में हम देखते हैं कि छोटी आयु के बच्चों की आँखें भी बहुत खराब हो चुकी होती हैं। यह हालत हमारी तथा हमारे माता-पिता की लापरवाही का ही परिणाम है, जिसका सुधार करना परमावश्यक है।

आँखों की ज्योति जिसकी गई, उसके लिए सारा संसार अन्धकार-मय बन जाता है। वह बिना सहारे के कुछ भी कर पाने में अपने-आपको असमर्थ पाता है।

आँखें निम्न बातों के कारण खराब हो जाती हैं।

नित्य प्रातः अच्छी तरह स्वच्छ शीतल जल से साफ़ न करना। रात को बहुत देर तक पढ़ते रहना। धूप में अधिक समय तक खुले सिर और पैर चलना। आँखों की थकान पर भी उनसे काम लेते रहना। तेज़ रोशनी की तरफ देखते रहना। अधिक सिनेमा देखने का शौक। रज-वीर्य का अधिक नाश। स्त्री-पुरुष का सम्भोग-क्रिया के पश्चात्

ठंडा पानी पी लेना। दाँतों से ठीक प्रकार से चबाने का कार्य न लेना। पेट का ख़राब रहना आदि।

आँखों की ज्योति को बनाए रखने तथा उनकी सुन्दरता बढ़ाने के लिए निम्न बात पर ध्यान दें—

शीर्षासन, सर्वांगासन, सर्पासन करने से आँखों की बीमारियाँ दूर हो जाती हैं, और आँखों की ज्योति बढ़ जाती है।

बाल

नित्यं स्नेहार्द्रशिरसः शिरःशूलं न जायते।
न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतन्ति च॥ (चरक)

अर्थात्—"नित्यप्रति सिर पर तेल की मालिश करने से सिर का दुखना नहीं होता, न बाल उड़ते हैं, न गंजापन आता है, बाल जल्दी सफ़ेद नहीं होते और बाल नहीं गिरते।"

परमात्मा की रची इस पवित्र सृष्टि में मनुष्य, जीव-जन्तु और अनेक पदार्थों में हमें बाल देखने में आते हैं। बालों का अपना महत्त्व है। हम यहाँ सिर्फ़ मनुष्य से सम्बन्धित बालों की चर्चा करेंगे।

मनुष्य-शरीर में सिर से लेकर पैर तक हमें बाल दिखाई देते हैं। उनका हर स्थान पर अपना महत्त्व है। सिर के बाल—सर्दी, गर्मी, वर्षा और चोट से रक्षा करते हैं। भौंहों के बाल—पसीने आदि को आँखों में जाने से रोकते हैं। पलकों के बाल—आँखों में तिनका, मिट्टी, आदि जाने से रोकते हैं। नाक के बाल—बाहरी पदार्थों को और जीव-जन्तुओं को अन्दर जाने से रोकते हैं। इस प्रकार चमड़ी आदि के बालों का भी महत्त्व कम नहीं है।

ग़लत वस्तुओं का उपयोग करने से हम उनमें विकार पैदा कर देते हैं, जिससे नाना प्रकार के रोगों को हम निमंत्रण दे देते हैं। पहले लोग शरीर की सफ़ाई के लिए मुलतानी मिट्टी, रीठे, दही, बेसन आदि का उपयोग करते थे। इनसे बालों को पोषण-तत्त्व मिलता था। बाल और त्वचा कोमल और चमकदार बनती थी। परन्तु आजकल साबुन के उपयोग ने बालों की बुरी स्थिति बना दी है। साबुन में पड़ा सोडा शरीर की कोमलता और चमक को नष्ट कर देता है।

जिस दिन साबुन से स्नान करना हो, उस दिन सर्वप्रथम साबुन से शरीर साफ़ करके उसके पश्चात् किसी उपयोगी तेल से सिर के बालों तथा सारे शरीर को थोड़ा तेल लगाकर मालिश कर लें। तेल लगाने के पश्चात् पुन पानी से खूब स्नान कर लें। तौलिये से शरीर साफ़ कर लें। ऐसा करने से शरीर की कोमलता बनी रहेगी। बालों की जड़ें मजबूत बनेंगी। शरीर में स्फूर्ति आएगी। सिर के बाल चमकीले और सुन्दर बनेंगे।

आजकल लोगों ने तेल न लगाने की एक प्रकार से कसम खा ली है, विशेष करके नौजवान लड़के-लड़कियों ने। तेल न लगाना फ़ैशन-सा हो गया है। यही कारण है कि आजकल के युवक-युवतियाँ जवानी में ही बूढे नज़र आते हैं। इन लोगों को यह पता नहीं कि तेल न लगाने से क्या नुकसान है और तेल लगाने से क्या लाभ हैं। बालों की नित्य सरसों, आँवले, ब्राह्मी अथवा भृङ्गराज आदि से मालिश करें।

शीर्षासन, सर्वांगासन ठीक ढंग से करने पर बालों की जड़ें मजबूत बनती हैं। बालों का झड़ना बन्द हो जाता है। बाल जल्दी सफ़ेद नहीं होते। बाल कोमल और चमकीले बन जाते हैं। सुन्दर बाल और स्वास्थ्य चाहनेवालों को इन बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

मधुमेह (DIABETES)

मनुष्य एक सजीव प्राणी है, जिसके शरीर का प्रत्येक अंग एक-दूसरे को प्रभावित करता है, अथवा प्रभावित होता है। असंतुलित आहार से जैसे शरीर अस्वस्थ और रोगी बन जाता है, उसी प्रकार संतुलित आहार से वह स्वस्थ और नीरोग बनता है। असंतुलित आहार से ही अधिकतर बीमारियाँ पैदा होती हैं। आहार जो हम खाते हैं, वह ठीक प्रकार से न पचने पर आँतों में रहकर सड़न पैदा करता है। उस अवस्था में मनुष्य-शरीर में बीमारियाँ अपना प्रभाव दिखाने लगती हैं। उचित समय पर रोग का उचित उपचार न होने पर व्यक्ति असाधारण अवस्था को प्राप्त कर दुःखी बन जाता है। पुरुषार्थी और दृढ़ संकल्पवाले व्यक्ति अपने लक्ष्य को निश्चित रूप

से प्राप्त करते हैं, इसलिए किसी भी प्रकार से रोगी को कभी निराश नहीं होना चाहिए। आशावादी और प्रयत्नशील की परमात्मा अवश्य मदद करता है। कहा भी है—

हिम्मते मर्दां, मददे-खुदा

मधुमेह एक भयंकर रोग है—यह दो प्रकार का होता है। १. शर्करायुक्त मधुमेह (Diabetes-Muilltus),, २. शर्कराविहीन-बहुमूत्र (Diabetes-Insipious)। आयुर्वेद में शर्करायुक्त को "सोम-रोग" तथा शर्कराविहीन को "जलसेह" या "मूत्रातिसार" कहते हैं। इस बीमारी की मुख्य जड़ भी खराब हाज़मा है।

लक्षण—मूत्रावस्था मक्षिकायाः।

अर्थात्—जिस मूत्र में चीनी रहती है उसपर मक्षिका आती है और बैठती है। यह मधुमेह का मुख्य लक्षण है। मधुमेह रोगी की प्राथमिक पहचान है—कब्ज़ियत, सिर का दर्द, सिर में चक्कर आना, मसूड़ों का फूलना, दाँतों की खराबी, दाँतों से दुर्गन्ध आना, फेफड़ों की खराबी, मूत्र में जलन, शरीर में खुजली होना, आलस्य का होना, काम करने में मन न लगना, ज़ख्म-फोड़ा हो जाने पर शीघ्र ठीक न होना, मूर्च्छा हो जाना, आदि। इन रोगों के बढ़ जाने पर खतरनाक शारीरिक बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, जैसे कि हृदयरोग, पक्षाघात, राजयक्ष्मा आदि। ये घातक रोग मनुष्य पर शीघ्र हावी होकर उसके अस्तित्व को समाप्त कर देते हैं।

कारण—योग तथा आयुर्वेद के अनुसार इस रोग का मुख्य कारण अग्नि-ग्रन्थि का कमज़ोर हो जाना है। इसमें यकृत, प्लीहा, अग्न्याशय मुख्य हैं। आधुनिक पाश्चात्य विधान के अनुसार भी अग्न्याशय के आन्तरिक रस—जिसे Insulin कहते हैं—से पाचन-क्रिया में मदद मिलती है। इस रस से Dextrose, Glycogen Carbo-Hydrate बनती है। यकृत यही Dextrose स्टार्च, चर्बी Albumen (एलब्यू-मन) एवं कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करता है। यकृत में शक्ति-रूप मे यही शर्करा ही संचित रहती है। शरीर की क्षमता के अनुसार इस शर्करा का पाचन होता रहता है। इस पाचन के फलस्वरूप शरीर का तापमान अपने स्तर पर बना रहता है और शरीर के स्नायु आदि

कार्यशील रहते हैं। अशक्त अग्नि-ग्रन्थियाँ अपनी आवश्यक क्रियाएँ नहीं कर पातीं। कमज़ोर यकृत अपने-आप में शरीर की आवश्यकता के अनुसार आवश्यक तत्त्वों की मात्रा संचित नहीं रख सकता और उसी प्रकार कमज़ोर अग्न्याशय शरीर को क्रियाशील रखने के लिए अति आवश्यक द्रव्य अर्थात् शर्करा का पर्याप्त निर्माण नहीं कर पाता है जिसके कारण शर्करा रक्त के प्रवाह में मिश्रित होकर रक्त के क्षारांश को कम कर देती है। इसी कारण शरीर की प्रतिरोधात्मक शक्ति का नाश होता है। रक्त में शर्करा के मिश्रण से वृक्क को भी अधिक कार्य करना पड़ता है, क्योंकि वृक्क के माध्यम से ही रक्त में मिश्रित शर्करा के आलोड़न के लिए प्रचुर मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप रोगी को अधिक प्यास लगती है। वह खूब पानी पीता है और बार-बार मूत्र-शंका का शिकार बन जाता है।

आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के अनुसार मधुमेह (डायबिटीज़) के रोगी को जानवरों के अग्न्याशयों से एकत्र की गई Insulin का इंजेक्शन दिया जाता है। इन इंजेक्शनों को अधिक मात्रा में लगाने से हृदय में स्फुरण होने लगता है, पसीना आने लगता है, रोगी की अवस्था चिन्ताजनक बन जाती है, जिससे मृत्यु भी हो जाती है। ऐसी गम्भीर अवस्था में तत्काल रोगी को ग्लूकोज़ अथवा चीनी देने से राहत रहती है। रोगी वंश-परम्परा से भी यह बीमारी हो जाती है। अनियमित आहार-विहार इस बीमारी की जड़ है।

उपचार—१. अधिक स्त्री-सहवास इस बीमारी को वायुवेग से बढ़ाता है। इसलिए रोगी को संयम से काम लेना चाहिए।

२. मानसिक चिन्ता, क्रोध, शोक, भय आदि विकारों से इस रोग में अमर्यादित वृद्धि होती है। रोगी को इन विकारों से बचने का पूरा प्रयास करना चाहिए।

३. मधुमेह के ६० प्रतिशत रोगी अधिक खाने से बीमार पड़ते हैं। इसलिए आवश्यकता से कुछ कम खाना चाहिए। खाना खूब चबा-चबाकर समय पर ही खायें। खाने के लिए जीनेवाले व्यक्तियों का यह बीमारी कभी पीछा नहीं छोड़ती।

४. पेट साफ रहे, इसके लिए पूरा प्रयास करें।

५. प्रातःकाल कम-से-कम तीन मील खुली हवा में गहरी साँस लेते हुए सैर करें।

६. सम्भव हो तो निम्न योगासन नित्यप्रति अवश्य किया करें—सर्वांगासन, धनुरासन, भुजंगासन, शलभासन, पश्चिमोत्तानासन, कुक्कुटासन, पेटप्रैस-क्रिया।

७. आसनों के पश्चात् प्रातराश में सिर्फ ३-४ ताज़े करेलों का रस लें तो इस बीमारी के लिए रामबाण है।

८. सरसों के तेल की मालिश सर्दी में नित्य तथा गर्मी में सप्ताह में दो बार अवश्य करें; पेट की मालिश विशेष रूप से करें।

९. कटि-स्नान नित्य करें।

१०. स्नान करते समय मेरुदण्ड पर ठण्डे पानी की धार डालें, लाभ होगा।

११. मीठे, चटपटे, तले, सड़े गले पदार्थ कभी न खाएँ।

१२. स्ट्रिकनीन, क्लोरोफ़ार्म जैसी तेज़ दवाओं का उपयोग कभी न करें। ये दवाइयाँ खून में क्षीणता लाती हैं, जिसके कारणस्वरूप भी यह बीमारी हो जाती है।

१३. प्रातःकाल खुले शरीर सूर्य के सामने आधा घण्टा बैठें अथवा लेटें और गहरे श्वास लेते रहें। इस क्रिया से असाधारण लाभ होता है।

१४. मधुमेह का रोग विशेषकर बुद्धिजीवी, शारीरिक श्रम से जी चुरानेवाले लोगों को होता है। मेहनत करनेवाले मज़दूरों को नहीं होता। इसलिए शारीरिक श्रम खूब करना चाहिए। आलस्य इस बीमारी को बढ़ाता है। आलसी व्यक्ति का यह बीमारी कभी पीछा नहीं छोड़ती।

१५. उपवास से इस बीमारी में असाधारण लाभ होता है। रोगी को सर्वप्रथम तीन दिन कुछ नहीं खाना चाहिए। तत्पश्चात् १०-१५ दिन उबली हुई सब्ज़ियाँ तथा संतरे, टमाटर, मुसम्मी, अनन्नास, जामुन, अनार, नाशपाती, अंगूर, पके गूलर के रस पर रहना चाहिए। पेट पूर्ण रूप से साफ हो जाने पर सात्विक, जल्द हज़म होनेवाला

आहार नियमित समय पर लेना चाहिए।

१६. दिन में ३-४ बार कागज़ी नींबू का रस ताज़े पानी में डालकर लिया करें।

१७. ताज़े आँवलों का रस तथा कागज़ी नींबू का रस समान भाग लेकर शहद में मिलाकर २-३ बार लें।

१८. जामुन की गुठली का चूर्ण, बेलपत्र का चूर्ण तथा करेले का चूर्ण समान भाग मिलाकर प्रातः-सायं दो माशे ताज़े जल के साथ लें।

१९. रात्रि को गाय के दूध में चने भिगो दें। प्रातः फूल जाने पर शहद में मिलाकर खूब चबाकर खावें।

२०. गुडमार और बेल-पत्तों का समान भाग निकालकर प्रातः-सायं पानी में डालकर लें।

२१. गुडमार तथा जामुन के पत्तों का चूर्ण बनाकर प्रातः-सायं गाय के ताज़े दूध के साथ लें।

२२. पके बेल को शहद में मिलाकर खाना चाहिए।

२३. गुडमार १० तोला, जामुन की गुठली ५ तोला, सोंठ ५ तोला लेकर, कपड़छन चूर्ण बनाकर, ग्वारपाठा के रस में घोटकर, ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनाकर दिन में तीन बार शहद के साथ लेने से पूर्ण लाभ होता है। ये गोलियाँ जिसने नियमपूर्वक लीं उनको असाधारण लाभ हुआ है। यह स्व-अनुभव की बात है।

२४. सूर्यतापी नारंगी रंग की बोतल का जल दो भाग तथा आसमानी रंग की बोतल का जल एक भाग आधी छटाँक की मात्रा में प्रातः-सायं भोजन के पश्चात् लेने से लाभ होता है।

२५. गर्मी के दिनों में टेरिकाटन, टेरिलीन तथा जुराब आदि गर्म कपड़े पहनने से यह बीमारी बढ़ती है। सूती, विशेषकर खादी के कपड़े पहनना हितकर है।

२६. शारीरिक-मानसिक आराम करना परमावश्यक है।

२७. ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए खूब परिश्रम करें।

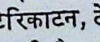

क्या आप जानते हैं ?

इलाज के लिए दवाओं से दालें उत्तम हैं !
प्राकृतिक इलाज के लिए प्रकृति का सहारा लें !

अनाज, दालें, कन्द-मूल और सूखे मेवे
प्रकृति के दिये हुए बहुमूल्य उपहार हैं।
इन्हीं का अदल-बदलकर सेवन करने से
आप संसार-भर के रोग मिटा सकते हैं।
इस दिशा में वर्षों की खोज के बाद
एकत्र किये गए रहस्यों को पाने के लिए
पढ़ें—

डॉ० समरसेन लिखित

सर्वाधिक बिकनेवाली अनमोल पुस्तक

'सुबोध घरेलू इलाज'

प्राप्ति-स्थान

सुबोध पब्लिकेशन्ज
२, अंसारी रोड, नई दिल्ली-११०००२

आपनें यह मुहावरा सुना ही होगा कि लो, मेंढकी को भी जुकाम होने लगा ! मतलब यह कि जैसे मेंढकी को जुकाम नहीं हो सकता, मुर्गे को बदहज्मी नहीं होती, मछली को नजला नहीं सताता, कछुए को बवासीर नहीं होती और साँप को साँस का रोग नहीं होता, उसी तरह मयूर, मकर, मण्डूक, कुक्कुट, मत्स्य, कूर्म और सर्प की मुद्रा में आसन लगाने से नर-नारी भी नीरोग रह सकते हैं। भारतीय मनीषियों ने वर्षों तक जीव-जन्तुओं का गहरा अध्ययन करने के बाद ही उनके नामों से योगासन सिद्ध किये हैं।

डॉ० समरसेन लिखित

योगासनों से इलाज

सरल है, सहज है, अनुभूत है,

हर कोई आसानी से कर सकता है।

नया संस्करण छप चुका है

भारत के सभी बुकस्टालों पर सुलभ है।

आप यहीं सोचकर रह जाते होंगे कि

सफल कैसे हों ?

उन्नति कैसे करें ?

धनुकुबेर कैसे बनें ?

चिन्तामुक्त कैसे हों ?

हँसते-हँसते कैसे जियें ?

जो चाहें सो कैसे पायें ?

अपना खर्च कैसे घटाएँ ?

हमारी आपको यही सलाह है—

अवसर को पहचानो !

अपने आपको पहचानो !

आप क्या नहीं कर सकते !

आपके सात सवाल और हमारी तीन सलाहें

विश्वविख्या स्वेट मार्डन लिखित

ये दस पुस्तकें आपका जीवन सँवार देंगी ।

इन्हें पढ़ते हुए ऐसा महसूस होगा

जैसे कोई आपको गुदगुदाए जा रहा हो ।

किसी भी बुकस्टाल से खरीद लीजिये ।

अगर आप चाहते हैं कि

जुल्फों में काली घटाओं की छटा बनी रहे

माथे पर सूर्य-जैसी आभा दमकती रहे

आँखों में कशिश की बिजलियाँ कौंदती रहें

गालों में सेव-जैसी लालियाँ भरी रहें

होंठों पर अनार-जैसी कलियाँ चटकती रहें

अंग-अंग से यौवन की मस्तियाँ छलकती रहें

तो फिर नकली मेकअप के सहारे छोड़ दीजिये

और कुदरत की रंगशाला से रंग चुनिये।

इन्सान जिन पाँच तत्त्वों से बना है

उन्हीं तत्त्वों की पूर्ति कर दीजिये

पाँच-पाँच सौ वर्ष जीनेवालों की पद्धति अपनाइये

डॉ० समरसेन लिखित

प्राकृतिक चिकित्सा

यह इतनी रोचक शैली में लिखी गई है कि

मुस्कराहटों से आपके दामन भर जाएँगे।

प्रकाशक

सुबोध पब्लिकेशन्ज

२, अंसारी रोड, नई दिल्ली-११०००२

स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ परमोपयोगी प्रकाशन

- ☐ हृदय रोग कारण और निवारण — डॉ॰ लक्ष्मीनारायण शर्मा
- ☐ गर्भस्थिति प्रसव और शिशुपालनं — डॉ॰ लक्ष्मीनारायण शर्मा
- ☐ स्वास्थय ओर योगासन — योगाचार्य भगवान्‌देव
- ☐ घरेलू इलाज — डॉ॰ समरसेन
- ☐ योगासनों से इलाज — डॉ॰ समरसेन
- ☐ आहार चिकित्सा — वैद्य सुरेश चतुर्वेदी
- ☐ स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग — वैद्य सुरेश चतुर्वेदी
- ☐ घरेलू दवाइयाँ — वैद्य सुरेश चतुर्वेदी
- ☐ सौ वर्ष कैसे जियें — वैद्य सुरेश चतुर्वेदी
- ☐ कैंसर कारण और निवारण — डॉ॰ टी॰ बी॰ एल॰ जायसवाल
- ☐ मोटापा कैसे घटायें — डॉ॰ समरसेन
- ☐ प्राकृतिक चिकित्सा — डॉ॰ समरसेन
- ☐ योग एक वरदान — डॉ॰ द्वारका प्रसाद
- ☐ योग साधना और प्राणायम — श्यामजी गोकुलजी वर्मा
- ☐ मानसिक रोग कारण और निवारण (हौम्योपैथी) डॉ॰ प्रकाश भारती
- ☐ घर का डॉक्टर (हौम्योपैथी) — डॉ॰ प्रकाश भारती

प्राप्ति स्थान

सुबोध पॉकेट बुक्स

२/७, अन्सारी रोड़, दरियागंज
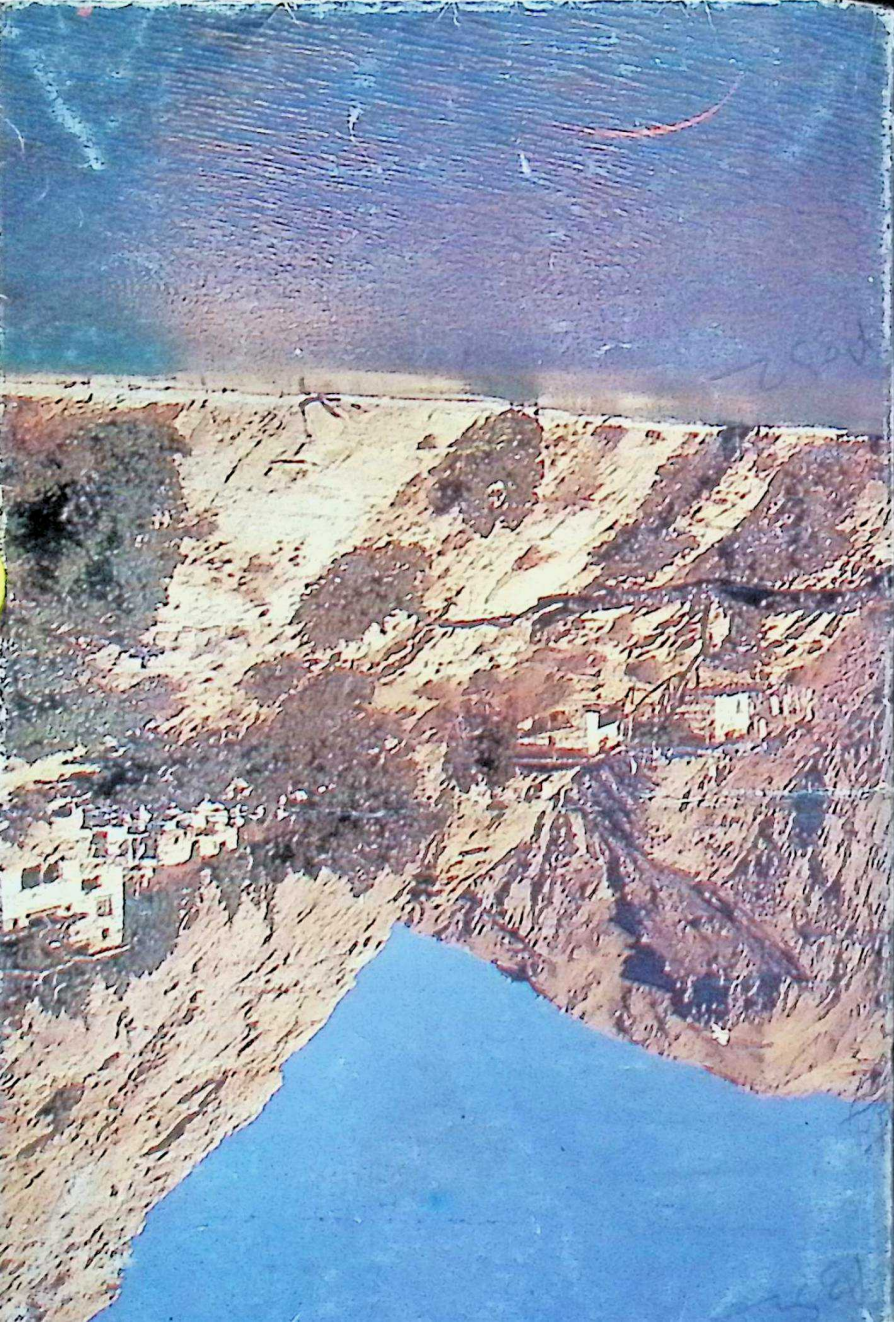
नयी दिल्ली-११०००२